# वासुदेव श्री कृष्ण

जैन धर्मदिवाकर श्रमणसंघीय तृतिय पट्टधर

**आचार्य सम्राट् श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज**

के सुशिष्य

**प्रज्ञामहार्षि प्रवर्त्तक डॉ राजेन्द्र मुनि जी महाराज** द्वारा

लिखित वासुदेव श्री कृष्ण कथा

आज्ञानुसार

ई-पुस्कालय के लिए प्रस्तुत कर्त्ता-

**स्वतन्त्र जैन जलन्धर**

9855285970

86, करतार ऐवन्यु, हैबोवाल लुधियाना

# वासुदेव श्री कृष्ण

जैन एवं वैदिक दोनों ही परम्पराओं मे श्री कृष्ण को वासुदेव कहा गया है, किन्तु दोनों परम्पराओं में इस शब्द के प्रयोग में उल्लेखनीय अन्तर है। वैदिक परम्परा में तो वसुदेव के पुत्र होने के नाते वासुदेव श्री कृष्ण का अपर नाम हो गया है किन्तु जैन परम्परा में वासुदेव इस प्रकार किसी व्यक्ति विशेष का नाम न होकर विशिष्ट गुणयुक्त महापुरुषों की एवं अन्तिम 24 वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी हुए हैं । 22वें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि के समकालीन वासुदेव ही श्री कृष्ण थे। वे अपनी वासुदेव परम्परा के 9 वें अर्थात् अन्तिम वासुदेव हैं।

**कंस परिचय-**

वसुदेव ने अनेक विवाह किये थे। देवकी के साथ उनका अन्तिम विवाह था। वसुदेव-देवकी ही श्री कृष्ण के जनक जननी थी। वसुदेव-देवकी परिणय में कंस की अति महत्वपूर्ण भूमिका रही । विषष्ट शलाका आदि ग्रंथों में वासुदेव के साथ कंस की घनिष्टता एवं अनुराग वर्णित हुआ है। कंस का यह नाम क्यों रहा। इसके पीछे भी एक कथा है। भोजवृष्णि के आलम उग्रसेन मथुराधिपति और धारिणी उनकी महारानी थी। कंस वही राज-दम्पति का पुत्र था। कंस जब गर्भ में था, रानी धारिणी का एक अद्भुत दोहद होने लगा कि वह अपने स्वामी उग्रसेन का मांस भक्षण करे और अमंगल कामना की पूर्ति एक विकट समस्या बन गई। एक अंधेरे कमरे में राजा को लेजाया गया और एक

खरगोश का वध कर दिया गया। योजनानुसा1र उग्रसेन ज़ोर-ज़ोर से कराहते रहे जिसे धारिणी ने सुना और अपने पति का मांस मान कर उसने खरगोश के मांस का भक्षण किया। कालान्तर में वह सोचने लगी कि जो संतान गर्भास्थ अवस्था में ही पिता के लिए ऐसी कष्टकारी है वह जन्म लेकर और विकसित होकर पिता के लिए कितना घातक हो सकता है। भावी अनिष्ट की कल्पना नाम से वह आकुल रहने लगी और पुत्र उत्पन्न होने पर उसने उसे कांस्य पेटिका में बंद कर यमुना में प्रवाहित करवा दिया। माता और पिता का नाम अंकित कर दो मुद्रिकाएं भी पेटिका में रखवा दी गयीं थी। एक धनी-सुभद्र के हाथ ये पेटिका लगी और वह स्नेहपूर्व बालक का लालन-पालन करने लगा। कांस्य पेटिका प्राप्त होने के कारण बालक का नाम रखा गया-कंस। व्यस्क होने पर कंस वसुदेव के आश्रम में अनुचर रूप में रहने लगा, जिन्हों ने उसे युद्धाधि समस्त कलाओं की शिक्षा भी दी। तद्न्तर एक घटनाक्रम ने उसे मथुरा नरेश बना दिया। इस काल का प्रति वासुदेव जरासंध राजगृह का अधिपति था। जो अति बलवान और पराक्रमी था और अनेक नृपति उसके वर्चस्वाधीन थे. जरासंध ने वसुदेव के पिता सोरिमपुर नरेश समुद्र- विजय को आदेश दिया कि वह विद्रोही सिंह राजा को पकड़कर उसके समक्ष उपस्थित करे। उसने यह घोषणा भी की कि सिंहराजा को पकड़ने वाले के साथ वह अपनी पुत्री जीवयशा का विवाह भी करेगा और पुरस्कार में राज्य भी दिया जायेगा। कुमार वसुदेव की इच्छा स्वीकारते हुए राजा समुद्रविजय ने उन्हें इस अभियान पर जाने की अनुमति तो प्रदान कर ही दी,

किन्तु साथ ही उन्हें चुपके से इस रहस्य से अवगत भी करवा दिया कि जीवयशा कनिष्ठ लक्षणों की है, वह आपके पिता तथा पुत्र-दोनों के लिए अमंगलकारिणी बनेगी, दोनों कुलों के लिए कलंक और क्षय का कारण बनेगी। पिता ने निर्देश दिया कि जीवयशा से वसुदेव स्वयं विवाह न कर कंस के साथ कर दिया।

**कंस के वंश की खोज**

कंस के वंश की खोज की जाने लगी और मुद्रिकों से स्पष्ट हो गया कि वह मथुरा का राजकुमार है। परिणामतः वह जरासंध की घोषणा का लाभ उठाने योग्य भी समझा जाने लगा। अपने अभियान में सफल होकर वसुदेव जब जरासंध के समक्ष पहँचे तो जरासंध ने पूछा कि सिंह राजा को बन्दी करने वाला वीर कौन है। और योग्यतानुसार वसुदेव ने कंस का परिचय प्रस्तुत कर दिया। जीवयशा के साथ कंस विवाह सम्पन्न हो गया, वसुदेव रक्षित हो गया और कंस उनका कृतज्ञ हो गया। अपने जन्म और उसके पश्चात के समस्त वृत्तांत से अवगत होकर कंस अपने पिता उग्रसेन के प्रति रोष से भर गया और जरासंध की सेना सहित मथुरा आया। उसने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया और स्वयं मथुरा का राजा बन बैठा। पिता की यह दुर्गति देखकर कंस का अनुज अतिमुक्त कुमार के मन में विरक्ति उत्पन्न हो गयी और उसने दीक्षा ग्रहण करली।

**वसुदेव-देवकी-परिणय**

कंस अपनी गौरवपूर्ण स्थिति के लिए वसुदेव का आभारी था। उसने अपना आदर भाव के साथ वसुदेव को अपने यहाँ आमंत्रित किया और उसने वह अनुरोध स्वीकार कर लिया। कंस

का माथा देखकर मृतकावती नरेश थे वसुदेव से गुणशीला नृपकन्या देवकी के साथ विवाह का अनुरोध किया। इस सनुनय आग्रह को वसुदेव भी आस्वीकार नहीं कर सके। प्रसन्न मन कंस वसुदेव के साथ मृतकावती के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में नारद ऋषि ने वसुदेव को देवकी के विवाहार्थ प्रेरित करते हुए कहा कि यह तुम्हारी समस्त पत्नियों से श्रेष्ठ है। सर्वत्र-विहारी नारद जी ने वसुदेव से पूर्व मृतकायवती पहँचकर नृपकन्या के समस्त वसुदेव के गुण, रूप, शौर्य, शक्ति शील आदि का ऐसा वर्णन किया कि देवकी मुग्ध हो गयी। उसने वसुदेव को पति रूप में वरणकर ने का मन ही मन संकल्प कर लिया।

राजा देवक ने वसुदेव-कंस का भव्य स्वागत किया। वह बड़ा प्रसन्न था,किन्तु सहसा विवाह प्रस्ताव सुनकर वह अस्तव्यस्त हो गया। ना नहीं करते हुए भी वह तत्काल स्वीकृति नहीं दे पाया। पर राजकुमारी का प्रबल झुकाव देखकर अन्ततः उसे प्रस्ताव स्वीकार करना ही पड़ा। अत्यन्त भव्यता के साथ विवाह सम्पन्न भी हो गया। देवक ने पाणिग्रहण के समय अतुल सम्पति के साथ दस गोकुल अधिपति नन्द को भी वसुदेव को समर्पित किया।

## अतिमुक्त मुनि द्वारा भावी संकेत

मथुरा आगमन पर कंस ने वसुदेव-देवकी के सम्मान में भव्य समारोह आयोजित किया। कंस-वधु जीवयशा ने महोत्सव से आत्तर्धक रूचि दिखाई। मदिरा पान से वह उक्त थी, तभी दृष्टि अतिमुक्त पर पड़ गयी जो पारणे के प्रयोजन से मथुरा के राजभवन में पहुँचे थे। जहाँ जीवयशा के मर्यादाहीण व्यवहार को देख के उल्टे पाँव लौट पड़े। जीवयशा ने उन्हें पुकार कर कहा कि अरे देवर ! तुम ठीक ही समय पर आए हो। अच्छा तुम मेरे

साथ नृत्य करो, गान करो। मुनि उपेक्षा करते रहे, किन्तु अत्यन्त प्रताड़ित किये जाने पर उन्होंने रोषपूर्वक अमंगल अवितव्य का संकेत कर दिया और कहा कि हे जीवयशा ! जिस (देवकी) के निमित्त यह समारोह मनाया जा रहा है, उसी का सातवाँ गर्भ तेरे पति और पिता का वध कर करेगा। "उत्तर पराण" के अनुसार यह प्रसंग अनन्य रूप में भी ग्रहण किया जाता है। गंभीर मुनि-वाणि से जीवयशा का नशा हरण हो गया और उसने मुनि का पीछा छोड़ दिया। मुनि वाणि सदा सत्य होती है। इस भव्यतावश जीवयशा भावी अनिष्ट से अतंकित और विचलित हो गयी और कंस को तत्काल इस से अवगत करवाया। आत्मरक्षार्थ सतर्क कंस अपने प्रति वसुदेव की प्रसन्नता एवं विश्वस्तता का लाभ उठाना चाहा। उसने नाट्कीय चिन्ता के साथ वसुदेव से निवेदन किया कि आप के मुझ पर बड़े उपकार हैं। अब कृपा पूर्वक एक वचन और दीजिए कि आप देवकी के सात गर्ब जन्मते ही मुझे दे दें।

" उत्तरपुराण" में यह कथानक कुछ भिन्नता के साथ आया है। मुनि कि भविष्यवाणि से अणभिज्ञ और देवकी के साथ अपने प्रणय प्रसंग के कारण कंस से प्रसन्न वसुदेव ने यह वचन दिया। वैदिक परम्परानुसार देवकी-वसुदेव मथुरा से विदा होकर घर जा रहे थे, स्वयं कंस उनका रथवाहन था। देवक ने 400 हाथी, 75 हजार घोड़े, 18 सौ रथ व 200 दासियां दहेज में दी थीं। मार्ग में कंस को आकाशवाणी सुनायी दी कि जिसे तू रथ में बिठा कर ले जा रहा है, उस देवकी का सातवाँ बालक तुझे

मारेगा और वह तत्काल देवकी वध हेतु उधुत हो उठा। उसने देवकी के केश पकड़ लिये इस पर वसुदेव ने कंस को समझाया देवकी वध चित नहीं है इस से तो कोई भय तुम्हें है ही नहीं । इस के पुत्र से ही भय है तो मैं इसके सभी पुत्र तुम्हें सौंप दूँगा इस पर कंस आशवस्त कर आसन्न अनर्थ को वसुदेव ने घटित नहीं होने दिया।

**वासुदेव श्री कृष्ण जन्म**

कंस ने अपनी मृत्यु के भय से देवकी-वसुदेव को कारागृह में **डाल रखा** था, वहीं देवकी ने छः पुत्रों को जन्म दिया और वह सभी वचनानुसार कंस को दे दिये गये। कंस ऐसा मान रहा था ये देवकी के पुत्र हैं, अन्य जन ने भी ऐसा ही मान रहे थे किन्तु यथार्थ इससे भिन्न था।

भद्दिलपुर में एक नाग नाम का सेठ की पत्नी सुलसा को मृत शिशु उत्पन्न हुआ करते थे। उसने हरिणगमेषी देव की उपासना की। वह प्रसन्न हो गया। संयोगवश देवकी और सुलसा को एक ही समय प्रसव होता था और देव सुलसा के मृत पुत्र देवकी के पास और देवकी के जीवित पुत्रों को सुलसा के पास रख देता था। प्रसन्नमना सुलसा इसे देव का आशीर्वाद मानती। शिशुओं का विनिभय ऐसी छदम रीति से होता कि देवकी, सुलसा आदि किसी को भी इसका बोध नहीं हुआ।

इस प्रकार देवकी के पुत्र सुलसा के घर में पोषित होने लगे। उधर तथा कथित देवकी पुत्रों (सुलसा के मृत पुत्र) का कंस अंतिम संस्कार करा देता था। देवकी के अपने पुत्रों के नाम थे, (1) अनिकयश, (2) अनन्त सेन, (3) अजित सेन, (4) निहतारि,

(5) देव यश, (6) शत्रुसेन,31 (7) श्री कृष्ण वसुदेव-देवकी के सातवें पुत्र थे। वे श्लागनीय पुरुषों की श्रेणी में थे। स्वर्ग से च्युत होकर मुनि गंगदत्त का जीव माता देवकी ने मेघनील कान्ति वाले सुन्दर शिशु श्री कृष्ण को जन्म दिया। श्री कृष्ण प्रभाव से उस समय प्रहरीजन निंद्रामग्न हो गये। देवकी ने पति वसुदेव से कहा कि कंस ने मेरे छः पुत्रों को मार डाला है। अब इस बालक को रहता कर लें। इसे गोकुल में नन्द के घर छोड़ दें, वहीं पर ये बड़ा होगा। वसुदेव के सामने कंस को दिये गये वचन के पालन की समस्या थी। देवकी ने वसुदेव को प्रलोभन देते हुए कहा- कि छल पूर्वक लिया गया वचन, वचन ही नहीं रहता है। अनीतिकारी, अहितकारी वचनों का पालन न करना अनीति नहीं है। वसुदेव सुदढ़ हो गये और श्री कृष्ण की रक्षार्थ संबध भी नन्द देवकी के साथ दहेज में आया, उनका दास था। बालक को उसके यहाँ छोड़ना निश्चित हो गया। घोर अँधेरी रात, मूसलाधार वर्षा, प्रहरीनिंद्रा मग्न और वसुदेव बालक को लेकर चले। देवताओं ने पुष्प वर्षा की, आठ दीपक प्रज्ज्वलित कर दिये और कृष्ण वसुदेव पर छत्र तान दिया। वसुदेव कारगर के मुख्य द्वार पर पहुँचे. वहीं कंस के पिता उग्रसेन बंदी थे। उन्हों ने पूछा इस समय बालक को कहाँ ले जा रहे हो जन्म हुआ ? वसुदेव ने कहा- ये कंस का शत्रु है, जो आपको भी कारगर मुक्त करेगा और शत्रु निग्रह करेगा। इस बात की गोपनीय ही रखें।

**<u>श्री कृष्ण गोकुल में-</u>**

यमुना पार कर नन्द के घर पहुँचे। उन्हें नवजात शिशु को देखकर नन्द आश्चर्य चकित रह गया। नन्द वधु यशोदा ने उसी

समय एक कन्या को जन्म दिया था। वसुदेव का प्रयोजन सुलभ हो गया। कन्या के स्थान पर शिशु श्री कृष्ण रख कर नन्द ने अपनी कन्या वसुदेव को सौंप दी, जिसे साथ लेकर वे मथुरा के कारगर में लौट आए और देवकी को उन्होंने वह कन्या दे दी। उसी समय प्रहरीजन जाग गये। क्या हुआ.... क्या हुआ ? पूछते हुए प्रहरियों ने पाया कि इस बार एक कन्या ने जन्म लिया।

जन्म होने पर जब कंस को ज्ञात हुआ तो आशवस्त हो वह कहने लगा मुनिवाणि असत्य ही हुई । देवकी की सातवीं सन्तान पुत्र तो नहीं पुत्री हुई है, भला यह मेरी क्या हानि कर सकेगी? कंस ने कन्या का वध नहीं किया। नासिका छेद कर उसे देवकी को लौटा दिया। जैन साहित्य में यह वृत्तान्त अन्य रूप में भी प्राप्त होता है। उत्तर पुराण में वर्णित है- (क) वैश्य कन्या का नाम (सुलसा के स्थान पर) अलका था। हरिणगमैषी देव की पुत्रों को हरण इन्द्र की प्रेरणा से करता है। (ख) रोहिणी पुत्र बलभद्र श्री कृष्ण को अंक मेंले आते थे। नन्द छत्र तान कर साथ चलते है। बैल रूप नगर देवता आगे चलते हैं जिसके सिंगों की मणियाँ दीपक का काम करती हैं। (ग) इन्हें मार्ग में मिल गया जिसने कहा- भूल देवताओं की, आराधिका मेरी पत्नी ने यह कन्या आपको सौंपने के लिये भेजी है। बलभद्र ने बालक नन्द को दिया और कन्या के साथ लौट आये (घ) नासिका छेद कर कंस ने धाय द्वारा तलधर में कन्या को पोषित करवाया जो आयु पाकर सुव्रता आर्य के पास दीक्षा ग्रहण करती है और विंध्याचल में तपस्या करती है। कालन्तर में वह बाघ का शिकार होकर

स्वर्गलाभ करती है। गिरिज इसे विंध्यावासिकी देवी रूप में पूजने लगते हैं। वैदिक सन्दर्भ इसके सर्वथा भिन्न प्रकार का है।

**गौपूजन प्रारम्भ**

अतुप्लिभ शोभाधारी श्री कृष्ण नन्दगृह में बड़े होने लगे। मथुरा में माता देवकी की ममता भरा मुख पुत्र-मुख-दर्शन हेतु अकुल-व्याकुल रहने लगा। जननी का गौकुल आना जाना तो संदेहजनक हो गया। अस्तु देवकी गौपूजन के भाव से गौकुल आयी और उसने छुप कर अपने सुत को देखा, तुष्ट हुई। यही क्रम चलता रहा और इस प्रकार इस देश में गौ-पूजन का समारम्भ हुआ। सम्पदा होने के कारण बालक को "श्याम" का सम्बोधन और श्री कृष्ण नाम मिला।

**शकुनी-पूतना बाधा**

वसुदेव के साथ वैमनस्य के कार प्रतिशोधार्य विद्याधर शूर्पम अपनी दो कन्याओं – शकुनी और पूतना को सक्रिय करता है। कृष्णवध के प्रयोजन से दोनों गौकुल आयीं। दुर्पोग ! बालक घर में अकेला था। ये बालक को आंगन में ही घसीट लाईं और शकुनी उसे भारी गाड़ के नीचे कुचलने लगी, पर विफल रही। पूतना आगे विषलिप्त स्तन का पान कराने लगी। रक्षक देवातायओं ने दोनों विद्याधारियों का प्रस्थान कर दिया। इसी समय नन्द घर लौट आए। आंगन में वह अस्त-व्यस्तल्य विद्याधारियों के मृत शरीर देखकर किसी अनिष्ट की अशंका से आतुर हो उठे और लपक कर वे भीतर गये। श्री कृष्ण को सकुशल पाकर के आशवस्त हो गये। एक सेवक ने बताया कि स्वामी, आपका पुत्र

बड़ा पराक्रमी है, उसी ने इन उपद्रवी स्त्रियों का वध किया है। वैदिक परम्परानुसार कंस राक्षसी पूतना को भेजता है जो विषाक्त स्तनपान कराने लगती है और बालक कृष्ण इतनी उगुल से स्तनपान करते हैं कि उसका देहान्त ही हो जाता है।

**<u>दमोदर श्री कृष्ण और ममलार्जुन</u>**

निश्चय कर लिया गया कि माता यशोदा बालक को अकेला नहीं छोड़ेगी। कुछ बड़ा हो जाने पर बालक श्री कृष्ण माता की दृष्टि से छिपकर इधर-उधर खिसक जाते थे। माँ बालक की कमर में रस्सी बाँध कर उसका दूसरा छोर खूँटे से बाँध देती और निश्चिंत हो जाती। यह प्रतिबन्ध जब तक श्री कृष्ण चाहते, तभी तक प्रभावी रहता था। स्वेच्छा-धाति बन्दन से वे जब चाहते मुक्त हो सकते थे। शूर्पक विद्याधर का पुत्र बालक कृष्ण के विरूद्ध अपनी बहनों और पिता के वध का प्रतिशोध पूरा कर लेने को व्यग्र था। वह ममल जाति के दो वृक्षों का रूप धारण कर नन्द के आँगन में स्थापित हो गया। पुत्र को उस से बाँधकर माँ निश्चिन्त माँ कहीं अन्यत्र गयी थी। बालक श्री कृष्ण ओंखल को घसीटते हे आंगन में आ गये और वृक्षों की ओर बढ़े। दोनों वृक्ष पास-पास सरकने लगे कि बालक को बीच में दबाकर कुचल दें। बालक के सबल प्रहार से दोनों वृक्ष ध्वस्थ हो गये और इस प्रकार शूर्पक पुत्र की जीवन लीला समाप्त हो गई। पेड़ पर रस्सी के बंधन के कारण श्री कृष्ण और" दमोदर" कहां जाने लगा। आचार्य जिनसेन ने जमल और अर्जुन नामक दो देवियों का होना माना है। श्री मद्भागवत में यह प्रसंग अन्यथा रूप में है। कुबेर पुत्र नलकुमर और मणिग्रीप यक्ष कन्या थीं। वे जलक्रीड़ा कर

रही थी कि सहसा नारद जी पहुँच गये। कन्याओं ने वस्त्र धारण कर लिये पर वे दोनों निर्लज्ज ठूंठ की भांति खड़े रहे। क्षुब्द ऋषि ने शाप दिया कि जाओ इसी तरह वृक्ष योनि में जा पड़े। इन के गिड़गिड़ान पर नारद जी उद्धार की भावना बताई कि जब कृष्ण अवतार होगा, भगवान तुम्हारा उद्धार करेंगे। नन्द आंगन में ये दोनों भाई वृक्ष हो गये थे और श्री कृष्ण जी के उद्धार पाकर वे अपने मूल स्वरूप में आए।

**बलभद्र-गोकुल-आगमन**

पुत्र वात्सल्य माता-पिता का मन ही मन इन बाधाओं और उपद्रवों से विचालित रहने लगा। यह भय भी था कि ऐसा करने से श्री कृष्ण। यह वास्तविक रूप भी कंस से अधिक समय तक छिपा न रह सके। अतः बालक की रक्षार्थ दोनों ने बलभद्र को यहाँ नन्द के भेज दिया। श्री कृष्ण-बलराम गोकुल में नाग भाँति क्रीजडाएं करते और ग्राम वासियों को सुखमय रखते। बलराम श्री कृष्ण को धनुर्विद्या एवं युद्ध कौशल सिखाने लगे। श्री कृष्ण अयुद्ध एवं अन्य विद्या में प्रवीण बनें। उनके शौर्य, शक्ति और पराक्रम में अद्‌भुत गति से विकास होने लगा। उनकी वरण माधुरी भी विकसित होने लगी। वे कलावन्त हो गये। सभी उनसे अभिमम प्रेम करने लगे। 11 वर्ष की ही आयु में वे गोकुल नायक बन गये। मुरली के स्वर पर गोपियाँ उनके पास दौड़ी आती। वे गोपाल थे। गायें उनके साथ अधिक स्नेह करती थीं। श्री कृष्ण ब्रजराज हो गये। इस प्रकार श्री कृष्ण ने ग्यारह वर्ष गोकुल प्रवास पूर्ण किया।

**कंसारि की खोज**

एक दिन कंस ने राजभवन में नासिकाबीण कन्या को देख लिया और उन्हें मुनिवाणि स्मरण हो गयी। वह विचलित हो उठे। एक निमितज्ञ को बुलाकर उससे प्रश्न किया कि मुनिवाणी सत्य होगी या मिथ्या। उत्तर मिला- मुनि वाणी रंचभर भी मिथ्या नहीं हो सकती। निमितज्ञ ने कहा कि तुम्हारा संहार भी जन्म ले चुका है और आस-पास ही कहीं बड़ा हो रहा है। समस्या यह थी कि कंस आपने विनाशक को पहचाने कैसे। निमितज्ञ ने राह बतायी कि कंस अपने दुर्धर्ष और बलवान बैल अरिष्ट, अश्व केष्ठी और दुर्दाय खर और मेघ को मुक्त विचरणार्थ वन में छोड़ दें। खेल ही खेल में जो उन चारों का वध कर दें, वही कंस का शत्रु होगा। वही देवकी का सातवाँ गर्भ होगा। निमित्तज्ञ के कहने से यह भी ज्ञात हुआ कि उसका शत्रु युग का वासुदेव होगा और वासुदेव महा बलवान होते हैं। वद कालिय मर्दन भी करेगा और समय आने पर वह उसका भी अन्त करेगा। निमित्तज्ञ के कथन से कंस आतंकित हो गया। वह आत्म रक्षा के लिए सक्रिय हो गया। शत्रु की खोज के लिए सुझाए गये उपाय को क्रियान्वित किया गया। इस प्रकार बैल अरिष्ट को वृन्दावन में मुक्त विचरण हेतु छोड़ दिया गया। उसके भयंकर उत्पात से त्राहि-त्राहि मच गई। श्री कृष्ण ने सिंगों से पकड़कर इस धुर्त बैल को नियन्त्रित कर लिया। वह पिछले पैरों से ऐसा उठा कि अपने ही भार से उसकी ग्रीवा भंग हो गयी और वह भयानक चीत्कार के साथ मर गया। गोकुलवासी प्रसन्नता से झूम उठे। वैदिक परम्परानुसार एक दैत्य बछड़े(वत्स) का रूप धारण कर गो-समूह में घुस आया। श्री कृष्ण ने पिछले पैर पकड़कर वरसासुर

को उठा लिया और उसे आकाश में इतनी तेजी से घुमाया कि उसका प्राणान्त हो गया। उत्तरपुराणानुसार अरिष्ट नामक देव बैल रूप में श्री कृष्ण के बल की परीक्षा लेने आया, श्री कृष्ण उसकी गर्दन मरोड़ने लगे किन्तु देवकी ने उसे छुड़वा दिया। अरिष्ट के पश्चात उद्दण्ड अश्व केशी भी आ गया। उसने अपने उत्पात से गायों और गोपों को आतंकित कर दिया। श्री कृष्ण ने पूरी शक्ति के साथ अपना हाथ उसके मुख में डाल दिया और दम घुटने से उसका भी प्राणान्त हो गया। खर और मेघ की भी इसी प्रकार दुर्गति हुई। कंस को निश्चय हो गया कि श्री कृष्ण ही उसके शत्रु हैं और वे परम बलवान एवं शूरवीर है। श्री मद्भागवत में खर का नाम नहीं आता, किन्तु धेनुकासुर प्रसंग के साथ उसकी समकक्षता स्थिर की सकती है। जो इस प्रकार है कि तालवन मधुर फलों से लदा था और और धेतुकासुर ने बलराम के वश में डुबकी झाड़ दी। बलराम ने उसके पिछले पैर पकड़कर घुमा दिया और उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इस पर धेनुश के बन्धु बांधओ का समूह एकत्रित होकर चढ़ आया और दोनों भाइयों ने सभी अश्वों को मारकर तालवट को निरापद कर दिया।

**शाङ्र्ग का धनुष्य प्रकरण**

कंस के राजभवन में शाङ्र्ग नामक एक अति प्रचीन धनुष था। उसने घोषणा करवा दी कि जो कोई इस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ा देगा उसके साथ वह सत्यभामा का विवाह करवा देगा। इस कहने पर कंस एक बार फिर पुनः निश्चित कर लेना चाहता था कि श्री कृष्ण ही उसके शत्रु हैं। यथा समय अयोजन किया गया। अनेक राजा-राजकुमार अपनी शक्ति का परिचय देने को

एकत्रित हुए। श्री कृष्ण भी बलराम और अनाधृष्टि के साथ स्वयंबर सभा में पहुँचे।

अनाधृष्टि वसुदेव- मदनरेखा का पुत्र था जो शौर्यपुर से मथुरा यात्रा में रात्रि विश्राम हेतु गोकुल रूक गया था। मार्ग से अपराचित होने के कारण अगले दिन श्री कृष्ण बलराम को साथ लेकर उसने मथुरा प्रस्थान किया। मार्ग अप्रशस्त था और उसका रथ बार-बार अटक जाता था। जब एक भारी पेड़ की बाधाओं से रथ रूक गया तो अनाधृष्टि ने उसे उखाड़ फैंकना चाहा पर पसीना-पसीना होकर भी वह समझ नहीं सका। श्री कृष्ण ने बड़ी सुगमता से समूल उखाड़ कर रास्ता बना दिया। अनाधृष्टि श्री कृष्ण की शक्ति पर आश्चर्य करने लगा और उनका प्रशंसक बन गया। स्वयंबर सभा में जब ये पहुँचे तो संयोग ऐसा हुआ कि अनाधृष्टि का मुकट छाती पर गिर कर खण्डित हो गया। उसका पैर फिसला था। उपस्थित राजा-महाराजा अट्टहास कर उठे और सत्यभामा भी व्यंग्य मुस्कराने लगी। आत्मविश्वास डिग जाने के कारण अनाधृष्टि प्रत्यंचा न चढ़ा सका। पराजय की इस स्थिति से श्री कृष्ण तड़प उठे। उन्हों ने क्षणमात्र में शार्ङग को प्रत्यंचा युक्त कर दिया। सभा-स्थल हर्षध्वनि से गूँज उठा.....पर वसुदेव इस अशंका से चिंतित हो उठे कि इस पराक्रम से कंस श्री कृष्ण को अपना शत्रु रूप में पहचान लिया तो नया संकट उठ खड़ा होगा। उनके निर्देश पर श्री कृष्ण और अनाधृष्टि तत्काल सभा स्थल त्याग कर गोकुल पहुँच गये। लोक में नन्द-नन्दन श्री कष्ण शर्ङगधर के रूप में विख्यात हो गये।

**<u>मल्ल महोत्सवः रहस्योद्घाटन-</u>**

अब निश्चिन्त हो गया कि कंस अपने शत्रु श्री कृष्ण को मारने के लिए नयीं नयीं चाले चलने लगा। उसने मथुरा में एक मल्लयुद्ध का आयोजन किया। श्री कृष्ण भी बलराम के साथ पहुँचे। दूरदृष्टा वसुदेव ने श्री कृष्ण की रक्षा हेतु अपने सभी भाइयों और पुत्र अकूर आदि को बुला लिया था। कंस ने यदुवंशियों का खूब स्वागत किया और उनके लिए एक पृथक उच्च मंच निरमित करवाया।

इससे पूर्व गोकुल में एक घटना घटित हो गई। मथुरा हेतु प्रस्थान पूर्व स्वागतार्थ बलराम ने यशोदा को पानी गर्म करने को कहा। व्यस्थता वश हुए विलम्ब से कुपित हो बलराम ने यशोदा को ताड़ना देते हुए कहा कि हमारी दासी होकर तुमने हमारी आज्ञा के उल्लंघन का साहस कैसे किया। माता के इस अपमान से श्री कृष्ण अमंगल हो उठे। दोनों भाई यमुना-स्नान के लिए चल दिए। अधीर श्री कृष्ण ने जब पूछा कि माँ को तुमने दासी क्यों कहा। तो सारा वृत्तान्त सुनाते हुए बलराम ने स्पष्ट कर दिया कि श्री कृष्ण भी वसुदेव-देवकी के पुत्र हैं। रहस्योद्घाटन पर कंस के प्रति श्री कृष्ण के मन में प्रतिशोध की प्रचण्ड ज्वाला धधक उठी और उन्होंने कंस वध की प्रतीज्ञा कर ली।

यमुना में स्नानार्थ जब ये उतरे तो पाया कि इस स्थल का यमुना जल बड़ा दीप्तिमान और आलोकित है। इस यमुनादह में भयंकर कालिया नाग का निवास था। उसी के मणि-प्रकाश से जल दीप्तिमान हो उठा था। श्री कृष्ण इस तथ्य से अपरिचित थे। इनके जल-प्रवेश करते ही भयंकर नाग लपका, किन्तु शक्ति के

साथ श्री कृष्ण ने उसे नथ लिया और उसके साथ क्रीड़ा करते रहे। अन्ततः उसका मर्दनकर नष्ट ही कर दिया। कुतुलमवश एकत्रित विशाल जन समूह ने श्री कृष्ण की जय-जयकार किया। दोनों भाई सभी का साधुवाद लेकर मथुरा के लिए चल दिए।

हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण में यह प्रसंग अनन्य रूप में है कि कंस ने गोकुल वासियों को एक विशिष्ट कमल लेने का आदेश दिया। जो यमुना के असंख्य सर्पो वाले दह में खिलता था। कंस जानता था कि श्री कृष्ण ही कमल लेने को जाएगा और मारा जाएगा। श्री कृष्ण ने जब जल-प्रवेश किया तो प्रचण्ड कालिया नाग ने क्रुद्ध होकर आक्रमण कर दिया। श्री कृष्ण ने उसे मर्दित कर दिया और कमल लेकर तट पर आ गये जिसे गोकुलवासी कंस के पास ले गए। कंस का भय और भी घना हो गया। उसने आज्ञा दी कि नन्द पुत्र सहित सभी गोप युद्ध के लिए तैयार हो जाएँ।

श्री मद्भागवतानुसार रमणीय द्वीप में नागों का निवास था। नाग माता कद्रू और गरूड़ माता विनता के मध्य शत्रुता थी अतः गरूड़ जी जहाँ भी सर्प को देखते तुरन्त उसे मार कर खा जाते थे। ब्रह्मा जी से निवेदन किये जाने पर उन्हों ने निर्णय दिया कि प्रत्येक आमावस्या को एक साँप गरूड़ जी को दे दिया जाए और गरूड़ जी साँपो का व्यापक विनाश नहीं करेंगे। इन साँपों में कालिया बड़ा भयंकर और घमण्डी था जो गरूड़ जी को दिया गया। साँप भी स्वयं खा जाता था। कालिया और गरूड़ के मध्य भयंकर युद्ध हुआ जिससे आतंकित कालिया अन्य सुरक्षित स्थान पर बस जाना चाहता था। एक अन्य कथानुसार यमुना के

द्रह में मत्सयों का समूह रहता था और गरूड़ जी मत्स्याहार किया करते थे। एक दिन जब वे मत्स्यनायक को ही खा गये तो उसकी पत्नियों ने ब्रह्मा जी के समक्ष करुण पुकार की। उन्होंने गरूड़ जी को शाप दिया कि वे इस द्रह की मछलियाँ नहीं खाएंगे। यह द्रह इस प्रकार गरूड़ जी से सुरक्षित था। और कालियाँ यहाँ निवास करने लगा। तब से यमुना के इस द्रह का जल विष के प्रभाव से सदा उबलता रहता था, नभ चर भी इस प्रभाव से झुलस जाते थे। तट पर दूर-दूर तक कोई वनस्पति नहीं उगती थी। श्री कृष्ण ने यमुना जल को शुद्ध करने का निश्चय कर लिया। जब उस उद्देश्य से जल में छलांग लगायी तो क्रुद्ध कालिया ने उन पर आक्रमण कर दिया और उन्हें अपनी दृढ़ कुण्डली में जकड़ लिया। तब श्री कृष्ण ने अपना तन इतना विकसित कर लिया कि भयंकर पीड़ा से कराहकर कालिया ने श्री कृष्ण को मुक्त कर देना पड़ा। श्री कृष्ण ने कालिया के मस्तक पर तीव्र पदाघात किये और उसे मर्दित कर दिया । अचेत नाग की पत्नियाँ पति के प्राणों की रक्षार्थ श्री कृष्ण से प्रार्थना करने लगी। सचेत होकर कालिया भी प्राणों की भीख मांगने लगा। श्री कृष्ण ने कालिय से कहा कि यह स्थान छोड़कर तुम अपने मूल स्थान रमणक द्वीप जाओ। मेरे चरणचिन्ह तुम्हारे वक्ष पर अंकित है, अतः गरूड़ अब तुम्हें नहीं खायेगा। कालिया ने ऐसा ही किया और यमुना जल शुद्ध हो गया।

**कंस संहार**

मल्लयुद्ध अयोजन पर जब श्री कृष्ण-बलराम मथुरा पहुँचे, नगर द्वार पर दो सजे-सजाये गज पद्मोत्तर और चम्पक

आगवानी के लिए खड़े किये गये थे। श्री कृष्ण के घात के लिए ऐसा किया गया था। इससे वसुदेव और श्री कृष्ण भी अनभिज्ञ थे। पद्मोत्तर ने श्री कृष्ण पर और चम्पक ने बलराम पर आक्रमण कर दिया। मुष्टी प्रहार से श्री कृष्ण ने पद्मोत्तर गज का प्राणान्त कर दिया और उनके दोनों दाँत खींच कर निकाल लिये। चम्पक हस्ति भी बलराम के हाथों मारा गया। दोनों भाई इस विजय पर बिना कोई गर्व दिखाते ही समारोह स्थल पर पहुँच गये। अनेक राजा-महाराजा एकत्रित थे। वसुदेव के 9 भ्राता (दशर्ह) भी उपस्थित थे। बलराम ने दूर से ही श्री कृष्ण को सब परिवार का परिचय दिया।

कंस का प्रिय मल्ल चाणूर अखाड़े में उतर कर उपस्थित समुदाय को चुनौती देने लगा कि कोई शक्तिशाली हो तो आये और मुझ से मल्ल युद्ध करे। सर्वत्र सन्नाटा छा गया इस बलिष्ट से बाहू युद्ध करना सुगम कार्य न था। श्री कृष्ण ताल ठोक कर आगे बढ़े। भीमकाय चाणूर के विपरीत कशोर कृष्ण को खड़ा देखकर एक बार तो सभी ओर कोलाहल मच गया। श्री कृष्ण ने सभी को आश्वस्त किया कि मैं इस मल्ल को पराजित कर दूँगा। कंस को विश्वास हो गया कि यही मेरा शत्रु है और उसके अन्यत्र मल्ल मुष्टिक को भी अखाड़े में उतरने का आदेश दे दिया। वह अधर्म मूढ़ था। अकेले कृष्ण के दो प्रतिद्वंद्धी थे। कंस तो किसी प्रकार शत्रु संहार चाहता था अब बलराम भी अखाड़े में उतर गये। श्री कृष्ण ने चाणूर को और बलराम ने मुष्टिक से भिड़ गये। मल्ल युद्ध के भीषण घात-प्रतिघातों के हैं। श्री कृष्ण के उदरस्थल पर चाणूर ने ऐसा प्रहार किया कि वे अचेत हो गए। कंस ने चाणूर

को इसी समय श्री कृष्ण का अन्त करने का संकेत दिया । चाणूर ने आक्रमण किया भी पर बलराम ने उसे विफल कर दिया। सचेत होकर श्री कृष्ण ने चाणूर को भुजाओं में ऐसा जकड़ा कि उसका प्राणान्त हो गया। कंस ने बौखलाकर अपने सेवकों को आज्ञा दी कि इन अधम गोपों को मार दो, इन के पालक नन्द को भी समाप्त कर दो और उसका सब कुछ लूट लाओ। जो नन्द का पक्ष ले उसे भी मार डालो।

कंस की ललकार सुन कर श्री कृष्ण ने कहा- कि पापी चाणूर वध पर भी तू स्वयं को मृत नहीं मानता, मुझे मारने के पूर्व तू आत्मरक्षा का उपाय करले। झपट भर के कंस के पास गये और केश पकड़ कर खींच लिया। वह धराशायी हो गया। उधर बलराम ने मुष्टिक का काम तमाम कर चुके थे। कंस की रक्षा के लिए जब उसके कर्मचारी शस्त्रादि लेकर दौड़े तो बलराम ने मंडप के एक स्तंभ को उखाड़कर उसकी सहायता से सबको खदेड़ दिया। श्री कृष्ण ने कंस के मस्तक पर पैर रखा और उसे यमलोक भेज दिया। जैसे दूध से मक्खी को निकाल दिया जाता है-वैसे ही श्री कृष्ण ने कंस की मृत देह को उठाकर मण्डप से बाहर फैंक दिया। हरिवंश पुराणानुसार कंस तलवार लेकर श्री कृष्ण पर झपटता है और श्रीकृष्ण तलवारधीश का-उसे बालों से पकड़कर पछाड़ देते हैं और मार डालते हैं। कंस ने जरासंध की सेना को भी समारोह में नागरिक वेश में खड़ा कर रखा था। कंस वध पर वे शास्त्र लेने लपके पर मुझ विजय आदि दशार्हों के शौर्य के सामने वे टिक न सके। वसुदेव ने बलराम को आसन दिया और श्रीकृष्ण को अंक में बिठाकर उसका गाल चूमते हैं। उन्हों ने

अपने ज्येष्ठ भ्राताओं को श्री कृष्ण बलराम का परिचय दिया और अतिमुक्त मुनि की भविष्य वाणी आदि समग्र पूर्व कथा सुनाई। उन्होंने बताया कि वचन बद्धता विवशता के कारण ही उन्हें कंस के अत्याचार सहने पड़े। देवकी के अतिशय आग्रह पर उसका सातवाँ गर्भ नन्द के घर छोड़ कर उसके स्थान पर उसकी कन्या को लाना पड़ा। समुद्र विजय ने उग्रसेन को करामुक्त किया व उनके साथ जाकर कंस का अंतिम संस्कार किया। जीवयशा को छोड़ बाकी रानियों ने अपने पति को जलांजलि दी। जीवयशा ने प्रतिशोध वश प्रतीज्ञा कि यादव कुल का सर्वनाश करके ही मैं पति को जलांजलि दूँगी। अन्यथा जीवित ही अग्नि प्रवेश करूँगी। वह मथुरा त्याग कर पितृगृह चली गयी। पिता ने उसे आशवस्त किया कि तू कोई चिन्ता न कर। मैं तेरे शत्रु का विनाश कर दूँगा।

श्री कृष्ण बलराम के अनुरोध पर समुद्रविजय ने उग्रसेन को पुनः मथुरा के सिंहासन पर आरूढ़ किया और महाराज उग्रसेन ने राजकुमारी सत्यभामा का श्री कृष्ण के साथ विवाह सम्पन्न कराया। हरिवंश पुराण के अनुसार विद्याधरों के राजा सुकेतुने अपनी पुत्री सत्यभामा के साथ श्रीकृष्ण का विवाह करा दिया।

**<u>सोमक-प्रसंग</u>**

जरासंध भी श्री कृष्ण विरोधी हो गया था और राजा सोमक के समय उसने समुद्रविजय को सन्देश भेजा कि कंस संहारक श्रीकृष्ण-बलराम को हमें सौंप दें, अन्यथा उन्हें हमारे कोप भांजन बनना होगा। समद्रविजय ने कहा कंस अत्याचारी

था, उसने कुल के भाईयों का वध किया है। कंस संहार कर श्री कृष्ण ने उचित किया है, वे निर्दोष है। पर सोमक का मन्तव्य था कि श्री कृष्ण-बलराम ही नहीं, वसुदेव भी अपराधी है। जिन्हों ने वचन बंधता का निर्वाह न कर आपने सातवें पुत्र को गुप्त रखा। उसने कहा कि जरासंध महाराज का आदेश पालन करना तुम्हारा कृत्तव्य है। पिता पर किये गये आक्षेप ने श्री कृष्ण को क्रुद्ध कर दिया। वे बोले कंस के साथी होने से जरासंध भी तुम्हारा शत्रु है। उसने हम से स्नेह सम्बन्ध तोड़ लिया है। स्नेह वश ही तो हम उसका आदेश मान करते हैं। श्री कृष्ण को कुलंगार कहने पर सोमक को अनाधृष्टि ने भी खरी-खोटी सुनाई। लज्जित हो वह लौट गया। जरासंध की ओर से भावी आपदाओं की कल्पना से समुद्रविजय चिन्तित हो गये। उन्होंने निमितज्ञ कौमुखी से इस नये वैमनस्य का परिणाम पूछा। संकेत मिला कि युद्ध होगा और श्री कृष्ण –बलराम द्वारा जरासंध वध होगा और उसके स्थान पर स्वयं श्री कृष्ण ही त्रिखण्डेश्वर होगें। उसने परामर्श दिया कि यादवों को मथुरा त्याग कर पश्चिम की ओर नया नगर स्थापित करना चाहिए। य़ात्रा आरंभ के साथ ही शुभपक्ष का ध्यान भी आरंभ होगा। मार्ग में जहाँ सत्यभामा दो पुत्रों को जन्म देगी, वही स्थान निरापराध होगा। वहीं नगर बसा लेना उचित रहेगा।

पुराणर्सनुसार समुद्रविजय ने पश्चिम की ओर सबल बल प्रस्थान किया। उग्रसेन भी साथ ही हो लिये। ग्यारह कुल कोटि यादवजन मथुरा से समुद्रविजय के साथ निकल पड़े। शोरियपुर से सात कोटि यादव भी उनके साथ हो गये। विशाल यादव समूह विंध्याचल की ओर अग्रसर हुआ।

**<u>कालकुमार प्रसंग</u>**

क्रुद्ध पिता जरासंध ने पुत्र कालकुमार के उस अनुरोध को स्वीकार कर लिया कि वह उसने कहा- यादव समूह में अथवा अग्नि में कहीं भी छिपे तो मैं उन्हें वहाँ से खींच लाऊँगा और नष्ट कर दूँगा। वह विशाल सेना लेकर यादवों के पीछे पड़ा। श्री कृष्ण के रक्षक देवों ने यादव पक्ष की सहायता की। देवों ने एक विशाल, एक डारीय दुर्ग रचा और भीतर स्थान-स्थान पर अनेक चितांए प्रज्जवलित कर दी। काली कुमार जब इस दुर्ग पर पहुँचा तो आग पर एक अनोखी वृद्धा बैठी रो रही थी। उसने बताया कि काल कुमार के भय से सभी यादव अग्नि में प्रवेश कर गये। मैं भी जल मरूँगी। कालकुमार अपनी प्रतीज्ञा का स्मरण कर अग्नि से यादवों को खींचने के लिए चिता में प्रविष्ट हो गया। वह भस्म हो गया। सेना ने रात्रि के कारण वहीं विश्राम किया। प्रातः जानकर जब सैनिकों ने पाया वहाँ न तो कोई दुर्ग है और न वह वृद्धा तो वह आश्चर्य चकित रह गये।

मार्ग में अतिमुक्त मुनि से भेंट हो जाने पर समुद्रविजय ने उनसे पूछा कि इस विपत्ति में हमारा क्या होगा ? उत्तर मिला कि चिन्ता का कारण ही नहीं है। समुद्र विजय के पुत्र अरिष्टनेमि 22वें तीर्थंकर होगें। बलराम व श्री कृष्ण क्रमशः बलराम और वासुदेव हैं। वासुदेव श्री कृष्ण प्रति वासुदेव जरासंध का वध कर स्वयं तीन खण्डों के अधिपति होंगे।

**द्वारिका-निर्माण-**

यादव पक्ष सौराष्ट्र में रेवतक पर्वत के समीप शिविर डाले थे कि सत्यभामा ने दो पुत्रों को जन्म दिया। यहीं पर यादवों ने नगर बसाना था। श्री कृष्ण ने समूह पूजन के पश्चात अष्टम भक्त तप आरंभ किया और लवण सागर का स्वामी सुस्थित देव प्रकट हुआ। देव ने श्री कृष्ण को पाँचजन्य और बलराम को सुघोष नामक शंख व रत्नादि भेंट किये और निर्देश चाहा कि वह क्या सेवा कर सकता है ? श्री कृष्ण ने कहा कि पूर्व वसुदेव की द्वारिका इस स्थल पर थी जिसे तुमने जलमग्न कर दिया था। अब वैसी ही द्वारिका पुनःनिर्मित्त करो। सुस्थित देव से वृत्तान्त जान कर इन्द्र ने कुबेर को आदेश दिया, जिसने द्वरिका का निर्माण करवाया।

कुबेर ने श्री कष्ण को दो पीताम्बर, नक्षत्र माला, हार, मुकुट,कौस्तुभ मणि, शङ्र्ग धनुष, आश्रय बाण तुणीर, नन्दन

खड्ग, कौमदी गद्य और गरूढ़ ध्वज रथ उपहार में भेंट किये। इसी प्रकार बलराम को दो नील वस्त्र, वरमाल्य, मूसल, अक्षय बाण तुषीर धनुष और हल का उपहार दिया गये। यादवों ने शत्रु संहारक श्री कृष्ण का राज्यभिषेक किया और वह द्वरिकाधीश हो गये और यादवों का द्वारिका प्रवेश हुआ।

**<u>रूक्मिणि-प्रसंग</u>**

श्री कृष्ण का द्वारिका में सुशासन चल रहा था। श्री कृष्ण प्रजावात्सल, विनम्र और मृदु नरेश थे। वैभव और सुखीधिम्य के कारण डरावनी देवपुरी समान थी। एक दिवस नारद जी राजभवन में पहुँचे। विनम्र और श्रद्धा के साथ श्री क़ृष्ण ने उनका हार्दिक स्वागत किया। एक प्रश्न उनके मन में मचल उठा कि श्री कृष्ण की भाँति रानियाँ भी विनम्र है अथवा नहीं? नारद जी अन्तःपुर में पहुँचे। रानियाँ ने उनका नम्रता स्वागत किया,किन्तु व्यस्त सत्यभामा से उनकी अपेक्षा हो गयी। नारद जी ने निश्चय किया कि सत्यभामा का गर्भ हरण अनिवार्य है और अन्तःपुर से लौट गये।

नारद जी अब ऐसी अनुपम सुन्दरी की खोज में थे श्री कृष्ण की नवरा बनाकर सत्यभामा का गर्भ भंग कर सके। कुंडिनपुर नरेश भीष्मक की राजकन्या रूक्मिणि त्रैलोक्य सुन्दरी थी। नारद जी के आगमन पर रूक्मिणि चित हो उन्हें प्रणाम किया। ऋषि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि द्वारिकाधीश श्री कृष्ण तेरे

पति होंगे। जिज्ञासा तुष्ट करते हुए उन्होंने रूक्मिणि को श्री कृष्ण के रूपगुण से सविस्तार परिचय भी करवाया। राजकुमारी के मन में श्रीकृष्ण के प्रति पूर्व राग जागृत हो गया और उसने उन्हें पति रूप में वरण करने का निश्चय कर लिया। नारद जी ने स्वयं ही एक रूक्मिणि का चित्रफलक तैयार कर श्रीकृष्ण को दे दिया। इस अनुपम रूप माधुरी पर श्रीकृष्ण मुग्ध हो गये। प्रणव प्रस्ताव कुंडिनपुर भेजा गया। कुमार रूक्मिणि प्रस्ताव से क्षुब्ध हो गये। दूत को उस ने उत्तर में कहा-कि रूक्मिणि का हाथ मैं एक ग्वाले को नहीं दे सकता। उस का परिणय निश्चित ही शिशुपाल के साथ ही सम्पन्न होगा।

रूक्मिणि जब बालिका थी तब अतिमुक्त मुनि ने भविष्यवाणी की थी वह श्रीकृष्ण की पट्टरानी बनेगी। धायफुइका ने इसकी चर्चा करते हुए कहा कुमार रूक्मि ने ठीक नहीं किया। फुइका रूक्मिणि की मनोकामना पूर्ण करने में सहयोगिनी बनी। एक गोपनीय पत्र उसने श्रीकृष्ण को भेजा कि मध्य माह की शुक्ल अष्टमी को नागपूजा के समय मै रूक्मिणि को उद्यान में लाऊँगी। हे कृष्ण ! यदि रूक्मिणि का प्रयोजन हो तो वहाँ आ जाना, अन्यथा वह शिशुपाल की हो जाएगी। श्रीकृष्ण केवल पराक्रम से परिचित रूक्मि का संशय मन भी आशान्त था। उसने शिशुपाल को शीघ्र आने का निमन्त्रण दिया। श्रीकृष्ण-रूक्मिणि प्रणय से अवगत शिशुपाल सेना सहित

कुंडिलपुर पहुँच गया। इधर योजनानुसार फुइका रूक्मिणि के साथ उद्यान में पहुँची, बलराम सहित आए श्रीकृष्ण प्रतीक्षारत थे। उन्हों ने फुइका को प्रणाम कर रूक्मिणि को रथारूढ़ होने का संकेत किया। धाय की अनुमति से उसने ऐसा ही किया। रथ से उसने प्रणाम किया और फुइका व सहायतार्थ अन्य दासियाँ ने चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगी कि श्रीकृष्ण रूक्मिणि का हरण कर ले गये। रूक्मि और शिशुपाल अपनी सेना सहित पीछा करते हुए समीप आ गये तो इन की शक्ति से परिचित रूक्मिणि अत्यन्त व्याकुल हो गई। श्रीकृष्ण ने बाण चलाकर ताड़पंक्ति को बेंध दिया। चुटकी में मीड़कर अंगूठी के हीरे का चूरा कर दिया। उनके पराक्रम का परिचय पाकर रूक्मिणि आशवस्त हो गई। श्रीकृष्ण से बलराम ने कहा कि तुम वधु को लेकर आगे चलो। मैं शत्रु को रोककर उनका निग्रह करता हूँ। भाई के आशवस्त करने से रूक्मिणि व्याकुल हो गई। उसने बलराम से विनती की, कि वे भाई का वध न करें। श्रीकृष्ण आगे बढ़ गये और बलराम ने मूसल से अरिदल का नाश कर दिया। हल धारण करने पर शेष सेना भी तितर-बितर हो गयी। अकेले रूक्मि बच गया। बलराम ने बाणों से उसका रथ खंडित कर कवच विहीर्ण कर दिया। क्षुरप बाण से उसकी दाढ़ी मूँछ भी उखाड़ दी। वे बोले मेरी अनुज के बंधु होने के कारण मैं तेरा वध नहीं करूँगा, जा छोड़ देता हूँ। लज्जित रूक्मि लौटकर कुंडिनपुर न गया, भोज फट

नगर बसाकर वहीं रहने लगा। द्वारिका पहुँचते-पहुँचते रूक्मिणि के मन में हीणत्व आने लगा। श्रीकृष्ण की अपरानियाँ आपके साथ वैभव लायी होंगी और वह खाली हाथ है। श्रीकृष्ण ने उसे रघुराम मूर्ति कहकर उसके संकोच में द्वय किया, तथा उसको सत्यभामा के महल के पास पृथक महल में रखा और उसके साथ गंधर्व विवाह किया।

**<u>आठ पट्टरानियाँ- अगुमहिषियाँ</u>**

श्रीकृष्ण की अनेक रानियाँ थीं,जिन की संख्या16 हजार मानी जाती है। इन में से सत्यभामा एवं रूक्मिणि सहित 8 प्रमुख पट्टरानियाँ थीं और अगुमहिषियाँ कहलाती थीं। शेष 6 पट्टरानियों के नाम थे, जाम्बवती, लक्ष्मणा, सुसीमा, गौरी, पद्मवती एवं गंधारी। जाम्बवती गगन नन्दन के विद्याधर राजा जाम्बवान की पुत्री थी और उसकी माता का नाम श्रीमती था। लक्ष्मणा सिंहरथ स्वामी हिरण्य लोग की पुत्री थी जो श्रीकृष्ण की आज्ञाओं की अवमानना किया करता था। श्रीकृष्ण ने लक्ष्मणा का हरण किया था। सुसीमा अराक्षरी (आयुस्वरी) नगरी के राजा की पुत्री और नमुचि की बहन थी जिसे अपनी अजेयल का दर्प था। प्रभास तीर्थ से श्री कृष्ण नमुति का वध कर उसे हरण कर लाये थे। गौरी मख्यदेश के राजा वीतभम की पुत्री थी। पद्मावती बलराम की माता रोहिणी के भाई आरिष्टपुर नरेश हरिण्यनाभ की पुत्री थी। गंधारी गंधार देश की

पुष्कलावती नगरी के राजा नग्नजित की पुत्री थी। नग्नजित के निधन पर गंधारी का भाई चारूदत्त राजा बना पर स्वजनों द्वारा अपदस्थ कर दिया गया था । श्री कृष्ण ने उन्हें पुनः राज्यारूढ़ कराया था। उसने गंधारी का विवाह श्री कृष्ण जी से साथ कर दिया था।

**<u>प्रद्युम्न जन्म एवं स्पुपहरण प्रसंग-</u>**

अतिमुक्त मुनि से रूक्मिणि ने एक प्रश्न किया, सत्यभामा भी उपस्थित थी। मुनिराज ने उत्तर दिया-कि तुम्हें श्रीकृष्ण जैसा ही पुत्र उत्पन्न होगा। तद्नंतर दोनों रानियों मे विवाद हो गया। प्रत्येक का मानना था कि कथन उनके विषय में था। निर्णयार्थ श्रीकृष्ण के पास आयीं। दुर्योधन भी उस समय उपस्थित था। जिससे सत्यभामा ने कहा- कि यदि मुझे पुत्र हुआ तो वह तुम्हारा जमाता बनेगा। तुरन्त ही यह अधिकार रूक्मिणि अपना जताने लगी। दुर्योधन यही कह सका कि दोनों में से किसी के भी पहले पुत्र होगा उस से ही अपनी पुत्री का विवाह कर दूंगा। सत्यभामा ने एक क्रूर शर्त रख दी कि हम दोनों में से जिसका पुत्र पहले विवाह करेगा-विवाह के समय दूसरी को अपना सिर मुँडवा लेना पड़ेगा। रूक्मिणि ने शर्त स्वीकार कर ली। बलराम, श्रीकृष्ण व दुर्योधन शर्त के साक्षी बने।

एक रात्रि रुक्मिणि ने स्वप्न देखा कि वह श्वेत बैल पर स्थित विमान में आरूढ़ है। तभी उसकी निद्रा भंग हो गई और

एक महर्दिक देव महाशंभु देवलोक से च्यव कर उसके उदर में प्रविष्ट हुआ। श्रीकृष्ण ने कहा कि मुनि वाणी सत्य घटित होने वाली है। ज्ञात होने पर सत्यभामा ने भी एक अनोखा स्वप्न की चर्चा श्रीकृष्ण जी से की और वे यथार्थ को भाँप गये। संयोग से दोनों रानियों ने एक साथ ही गर्भ धारण किया । रूक्मिणि गूढ़ गर्भ थी उसमें वाह्य लक्षण वही दिखाई देते थे, पर दोनों ने एक ही दिन पुत्रों को जन्म दिया। रूक्मिणि के पुत्र का नाम प्रद्युमन और सत्यभामा के पुत्र का नाम भानु रखा गया।

शिशु प्रद्युमन को श्री कृष्ण अंक में लिए बैठे थे कि उन्हें लगा कि रूक्मिणी बालक को उठा ले गई किन्तु वह नहीं ले गई थी बलक का अपहरण हो गया था और उस से माता बहुत दुःखी हुई। प्रद्युमन के पूर्व भव का शत्रु धुम केतू ने ही रुक्मिणी का रूप धारण कर अपहरण कर लिया था और वेताढ्यगिरी पर छोड़ गया कि बालक भूख प्यास से तड़प कर प्राण त्याग दे। विद्याधर भास-संवर बालक को उठा ले गया और उसकी निस्संतान पत्नी कंचन माला उसे पोषित करने लगी। काल संवर ने घोषित कर दिया कि उसकी गूढ़ गर्भा पत्नी ने पुत्र को जन्म दिया है। बालक की खोज में नारद जी ने सहायता की। उन्हों ने सीमंधर स्वामी से पता लगाने का अनुरोध किया। बात कर सीमंधर स्वामी ने बताया कि बालक मेघ कूट नगर में कालसंवर के घर में बड़ा हो रहा है, किन्तु पूर्व जन्म के कर्म वश अभी 16 वर्ष उसे वहीं

रहना होगा। मेघकूट मे बालक को सकुशल देख कर द्वारिका लौटे और श्रकृष्ण को सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सीमन्धर स्वामी ने प्रद्युमन के पूर्व भव का भी परिचय नारद जी को दिया। 16 वर्ष की आयु प्राप्त करते-करते प्रद्युमन गुण-शील और कलाओं मे प्रवीण नहीं अपितु व सुन्दर और आकर्षक युवक भी हो गये थे। कंचन माला उनपर मुग्ध हो गई रहस्योद्घाटन करते हुए कि मैं तुम्हारी जननी हूँ, उसने निमन्त्रण दिया कि आ मेरे साथ क्रीड़ा करो। प्रद्युमन ने काल-संवर और उसके पुत्रों का भय बताकर पिंड छुड़ाना चाहा कि वे मुझे जीवित न छोड़ें। कामांध कंचन-माला ने प्रज्ञप्ति और गौरी विद्याएं दीं और कहा- इन से तुम कभी किसी से पराजित नहीं हो सको गे। प्रद्युमन ने दोनों विद्याओं को सिद्ध भी कर लिया और कंचन-माला के प्रस्ताव को अनुचित बताकर घर छोड़ कर चल दिया। प्रतिशोध वस कंचन-माला ने अपने पति-पुत्रों को रो-रो कर कहा- कि प्रद्युमन मैरा शील भंग कर भाग गया है। पिता-पुत्र सब उसके पीछे भागे और घोर युद्ध हुआ। विद्याधर की पराजय हुई और उन्हें सन्देह हुआ कि इसको विद्याएं प्राप्त हैं। लौटकर कालसंवर ने पत्नी से अपनी विद्याएं लौटाने को कहा-किन्तु वह तो प्रद्युमन को दे चुकी थी। पत्नी के दुराचार को समझ कर खूब भर्त्सना की और प्रायश्चित हेतु प्रद्युमन के पास लौटा । तभी नारद जी आ गये, जिन्हे प्रज्ञप्ति

विद्या से प्रद्युमन को पहचान लिया और वह उन्ही के साथ द्वारिका को चल दिया।

सत्यभामा प्रसन्न थी। आज उसके पुत्र के विवाह का दिन था। रूक्मिणी उदास थी। पति-पुत्र मुक्त होते हुए भी उसके केश कटवा कर करूप बनाना होगा। वह चिन्तामग्न थी कि इसी समय द्वार पर लघु मुनि ने आकर बताया कि मैं 16 वर्षीय दीर्घ तपस्वी हूँ मुझे आहार दान दें। घर में केवल सिंहकेसरियां मोदक थे, जिन्हें श्रीकृष्ण ही पचा सकते थे। मुनि (प्रद्युमन) सारे मोदक खा गये। इसी समय केश काटने का समय आया की दासियाँ आ गईं, किन्तु प्रद्युमन ने सत्यभामा सहित दासियों को विद्या प्रयोग से केशरहित कर दिया। शर्त पूरी करवाने में सहायता के लिए सत्यभामा श्रीकृष्ण के पास गयी जिन्होंने बलराम को रूक्मिणी के पास भेजा। उन्होंने श्रीकृष्ण को रूक्मिणी के पास देखा और लौट आए रूक्मिणी को आनकर हर्ष हुआ कि मुनि उसी का पुत्र प्रद्युमन है । विद्या से ही प्रद्युमन ने दुर्योधन की राजकुमारी का अपहरण कर लिया। दुर्योधन ने श्रीकृष्ण से सहायता मांगी। श्रीकृष्ण ने कहा- कि मैं तो स्वयं 16 वर्ष से पुत्र वियोगी हूँ। मैं क्या सहायता करूँ। इस पर प्रद्युमन ने अनुमति लेकर राजकुमारी को उपस्थित कर दिया और उसका भानु के साथ पणिग्रह करवाया। इसके बाद अपने पूर्ण स्वरूप में प्रकट होने से पहले उसने माता रूक्मिणी को रथ में बैठा कर श्रीकृष्ण को

ललकारा कि मैं इसका हरण कर ले जा रहा हूँ। तुम में शक्ति है तो रोको। भीषण युद्ध हुआ और मुनि वेशधारी प्रद्युमन ने श्रीकृष्ण को शस्त्रविहीन कर दिया। उनकी सेना बिखर गई। श्रीकृष्ण को दक्षिणात्य नेत्र स्फूरित हुआ और नारद जी ने श्रीकृष्ण को बताया कि यह तुम्हारा पुत्र प्रद्युमन ही है जिसने सिद्ध कर दिया कि पुत्र पिता से बढ़कर है।

**शाम्ब-प्रसंग**

ईर्ष्यावश सत्यभामा ने श्रीकृष्ण से कहा कि मुझे भी प्रद्युमन सा ओजस्वी पुत्र चाहिये। श्रीकृष्ण ने अष्टम पौषधव्रत ग्रहण किया और नैगमेषी देव ने प्रकट होकर रून्म हार देते हुए कहा कि जिस स्त्री का यह हार पहना कर आप सेवन करेंगे उसे प्रद्युमन सा पुत्र होगा। जब श्रीकृष्ण ने सत्यभामा को निमन्त्रित किया तो प्रद्युमन प्रज्ञप्ति विद्या से सारा रहस्य जान गये। उन्होंने जाम्बवती को सारी बात बताकर उसे सत्यभामा का रूप देकर श्री कृष्ण के पास भेज दिया। वह धन्य हो गई। प्रसन्न और तुष्ट मन से वह लौट आई। तभी सत्यभामा पहुँच गई। श्रीकृष्ण आश्चर्य में पढ़ गये । सोचा कि सत्यभामा कामोत्सुक हो पुनः आई है। उन्होंने पुनः क्रीड़ा की तभी प्रद्युमन ने भेरी बजा दी सत्यभामा का हृदय भय-कम्पित हो गयी। श्रीकृष्ण जान गये कि प्रद्युमन ने सत्यभामा को छल लिया है। अब इसे कायर पुत्र होगा। इस का हृदय भयभीत हो गया था। कालान्तर में

जामवती ने पुत्र को जन्म दिया। जिसका नाम शाम्भ रखा गया और सत्यभामा के पुत्र का नाम भीरू कुमार।

**वैदर्भी-प्रद्यमन परिणय**

रूक्मिण् अपने पितृगृह से बिगड़े सम्बन्धों को सुधारना चाहती थी। भाई रूक्मि की पुत्री वैदर्भी के साथ प्रद्युमन का विवाह को अच्छा साधन समझ उसने परिणय प्रस्ताव भेजा, किन्तु रूक्मि ने अनादरपूर्वक उसे अस्वीकार कर दिया। प्रद्युमन ने माता को आश्वस्त किया। कि यह विवाह अवश्य होगा और मामा की स्वीकृति से होगा। पूर्व भव के सम्बन्धो के कारण प्रद्युमन का शाम्ब से विशेष स्नेह था। दोनों किन्नर और चण्डाल रूप मे भेजकर नगर पहुँचे। रूक्मि और वैदर्भी इनकी संगीतकला से प्रभावित हुए। राजकुमारी वैदर्भी ने पूछा तुम द्वारिका से आए हो तो क्या प्रद्युमन को भी जानते हो? इनके मुख से प्रद्युमन की प्रशंसा सुनकर बहुत प्रसन्न हुई. राजा का हाथी मतवाला होकर विनाश करने लगा। राजा ने घोषणा कर दी जो कोई इसको वश में कर लेगा उसको मुँह माँगा पुरस्कार दिया जाएगा। प्रद्युमन ने हाथी को नियन्त्रित कर लिया। भोजन की कठिनाई कहकर राजकुमारी को पुरस्कार में मांग लिया। राज क्रुद्ध होकर इन दोनों को बाहर निकाल दिया। विद्या बल से प्रद्युमन ने नगर के बाहर एक भव्य महल बनाया। एक रात्री प्रद्युमन अपनी प्रज्ञप्ति विद्या से वासत्विक रूप मे वैदर्भी के पास

पहुँच गया। वैदर्भी की सहमति से दोनों का गंधर्व विवाह हो गया। अपना नाम गोपनीय रखने का निर्देश देकर प्रद्युमन चला आया। सौभाग्य और परिणय सूचक चिन्हों को देखकर सब ने अनेक प्रश्न किये पर वैदर्भी मूक बनी रही। कुपित होकर राजा ने किन्नर-चण्डाल को बुलाकर राजकुमारी को उन्हें दे दिया। नगर के बाहर जब महल में पहुँचे तो बन्दी जन प्रशास्ति गान करने आए और रहस्य खुला कि किन्नर-चण्डाल तो प्रद्युमन-शांभ हैं। राजा ने उन्हें सादर अपने महल में बुलाया और वादर्भी-प्रद्युमन परिमय सम्पन्न करवाया।

**जरासंध युद्ध**

प्रवासी व्यापारियों से राजगृह में जीवयशा ने सुना कि समुन्द्र तट पर एक नगरी द्वारिका है जहाँ वासुदेव श्रीकृष्ण का शासन है। प्रतिशोध की ज्वाला में फुँक उठी जीवयशा-मेरे पति का हत्यारा अब तक जीवित कैसे है। जरासंध ने पुत्री को शान्त करते हुए तुरन्त सेना सहित प्रस्थान किया। नारद जी ने श्रीकृष्ण को युद्ध की पूर्व सूचना दे दी और उन्होंने अरिष्टनेमि से युद्ध का भविष्य परिणाम जानना चाहा। अरिष्टनेमि ने मुस्करा कर " ओम" का उच्चारण कर दिया जो सुधर्मा उनकी सहमति भी थी और श्रीकृष्ण विजय का पूरा संकेत भी।

युद्धोत्सव श्रीकृष्ण सेना-संगठन करने लगे। प्रयाणकर मथुरा से 45 योजन दूर सेनापति ने शिविर स्थापित किया

गया। यहाँ कुछ विद्याधरों ने एकत्रित होकर श्रीकृष्ण से सहयोग करने का प्रस्ताव किया और कहा कि वसुदेव प्रद्युमन,शाम्ब आदि हमारे साथ जरासंध के सामने भेज दीजिए। हम उसके खेचर विद्याधरों को रणभूमि में पहुँचने से रोककर माया के प्रभाव से युद्ध की रक्षा कर लेगें। ऐसा किया भी गया। जरासंध की सेना ने यादव शिविर पर 4 योजन बड़ा अपना शिविर बनाया। श्रीकृष्ण की सेना से इन शिविरों में बड़ा आंतक था। मन्त्री हंसके ने जरासंध से कहा- आक्रमण से पूर्व युद्ध को बराबर आँक लो। कृष्ण पक्ष बड़ा सशक्त है। दंभी जरासंध ने मन्त्री को फटकार लगा दी और कहा कि मैं यादवों का सर्वनाश कर दूँगा।

जरासंध ने एक हजार आरे वस्त्र चक्रव्यूह रचा जिसके केन्द्र में वह स्वयं अपने पुत्रों व सशक्त राजाओं के साथ रहा। प्रत्येक आरा में 100 हाथी, 200 रथ, 500 अश्व और 16000 सेनिक सहित एक राजा और चक्र की परिधि में 6250 राजाओं का समूह नियुक्त किया गया। पृष्ट भाग में गंधार व सैंधव सेना, दक्षिण में 100 कौरव भी नियुक्त किये गये। इसके आगे मकर व्यूह रचना था। यादवों ने गरूढ़ व्यूह रचा। अरिष्टनेमि उनके साथ रहे। शमेन्द्र ने अपना विशाल रथ भी सारथी मातली के साथ भेजा।

प्रचण्ड के साथ समारम्भ हुआ। दोनों पक्षों के विकट घात-प्रतिघात होते गया। आरम्भ में ही यादवों का सशक्त प्रहार

से तिलमिला कर जरासंध सैन्य भाग खड़े हुए पर क्रोध व प्रति हिंसा का साक्षात रूप सा जरासंध ने रणस्थल में आकर जो प्रहार किये तो समुद्रविजय के अनेक पुत्र धराशायी हो गये। जरासंध के 28 पुत्रों को बलराम ने वध कर दिया तो उन्हें जरासंध ने गदा प्रहार से अचेत कर दिया. श्रीकृष्ण ने जरासंध के 69 पुत्रों का वध कर दिया, तो उसने इतना प्रचंड आक्रमण किया कि एक बार तो श्रीकृष्ण के वध होने का प्रवाद भी सेना में व्याप्त हो गया। मातली के अनुरोध पर आरिष्टनेमि ने पौरंदर शंख ध्वनित कर शत्रु पक्ष को कम्पित कर दिया। और बाण वर्षा से व्यापक संहार कर दिया। प्रति वासुदेव का वध वासुदेव के हाथों ही होना चाहिए, इस मर्यादानुसार उन्हों ने स्वयं जरासंध का वध नहीं किया। अब श्रीकृष्ण जरासंध के आमने-सामने आ गये। जरासंध ने अपने अनेक विकट अस्त्र-शस्त्र सब विफल रहे तो उसने अमोघ अस्त्र चक्र का प्रयोग किया पर वह भी श्रीकृष्ण के तीन प्रदक्षिणा कर उनके ही हस्तगत हो गया। उसी समय घोषणा हुई कि नौंवा वासुदेव उत्पन्न हो गया है. जब श्रीकृष्ण के सावधान करने पर भी सन्मार्ग पर नहीं आया तो श्रीकृष्ण ने चक्र प्रहार से जरासंध का शिरच्छेद कर दिया। श्रीकृष्ण की जय-जयकार होने लगी। जरासंध की ओर से युद्ध करने वाले राजाओं की क्षमायाचना पर श्रीकृष्ण ने उन्हें अभयदान दिया, जरासंध पुत्रों का भी स्वागत किया। उसके एक पुत्र सहदेव को मगध

राज्य का चतुर्यांश का स्वामी बना दिया। समुद्र विजय सुत महानेमि को शोर्यपुर का,हरिदाम पुत्र रूक्मनाभ का उग्रसेन पुत्र धर को मथुरा का राज्य सौंप दिया गया। शत्रु-संहार असंभव होने पर प्रतीज्ञानुसार जीवयशा ने अग्नि प्रवेश कर लिया। यादवों ने भव्य विजयोत्सव मनाया और सेनापल्लि का नामकरण "आनन्दपुर" के रूप में किया गया।

**<u>बाणासुर वध</u>**

बाणासुर श्री निवासपुर का खेचर पति था, जिसकी अनिंध सुन्दरी कन्या उषा थी। उसके अराधन से प्रसन्न हो गौरी विद्या ने उसे बताया कि श्रीकृष्ण का पौत्र प्रद्युमन का पुत्र अनिरूद्ध उसका पति होगा। और वह अनिरूद्ध के अनुराग में खो गयी। गौरी विद्या के प्रिय शंकरदेव से बामासुर के वरदान दिया था कि वह सभी मुद्दों पर अजेय रहेगा। गौरी के सतर्क करने पर शंकरदेव ने वरदान में जोड़ दिया था कि स्त्री विषयक के युद्ध अतिरिक्त बाण उषा के लिए विशिष्ट वर की खोज में था। उषा अनिरूद्ध के स्वप्नों मे खोयी रहती थी। विद्याधरी चित्रलेखा एक रात्रि सोये अनिरूद्ध को उठा ले गये और उषा ने उससे गंधर्व विवाह कर लिया । घोषणा पूर्वक जब अनिरूद्ध का अपहरण कर लेजाने लगा तो बाण ने घेर लिया, युद्ध हुआ पर अनिरूद्ध अजेय रहा तो बाणासुर ने उसे नागपाश में बाँध लिया। द्वारिका में प्रज्ञाप्ति विद्या से पता चला कि अनिरूद्ध कहाँ है और

श्रीकृष्ण,बलराम और प्रद्युमन पहुँच गये। बाण ने कहा एक चोर को बचाने दो चोर (पिता और पितामह) आए हैं। अन्ततः,युद्ध हुआ जो विद्याकों और शास्त्रों के मध्य युद्ध था। वासुदेव ने श्रीकृष्ण ने बाणासुर का वध कर दिया और उषा-अनिरूद्ध को लेकर द्वरिका आ गये।

**अरिष्टनेमिः प्रव्रज्या ग्रहण**

भगवान अरिष्टनेमि 22वें तीर्थंकर थे जो समुद्रविजय के पुत्र थे। इस प्रकार श्रीकृष्ण के चचेरे भाई थे। श्रीकृष्ण द्वारा कंस-संहार के समय वह आठ वर्ष के थे। जरासंध वध के समय श्री द्वारिकाधीश त्रिखण्डेश्वर हो गए और यादव गण द्वारिका निवासी हो गये थे। अरिष्टनेमि भी यहीं विरसित हो अब युवा हो गये थे।

एक दिन वह राज्य शास्त्रगृह में गये और सुदर्शन को उंगली पर उठा कर धारण कर लिया, शाङ्र्ग धनुष को मोड़ दिया, कौमुदि गदा को कंधे पर धारण कर लिया और पंचजन्य शंख को फूँककर समस्त द्वरिका को थरथरा दिया। मान्यता थी कि यह सारा कुछ श्रीकृष्ण के लिए ही संभव है, जो मिथ्या हो गई थी। श्रीकृष्ण अरिष्टनेमि के बल से चकित रह गये। एक दूसरे की फैली भुजाएं को झुकाने में भी अरिष्टनेमि विजयी रहे, तो श्रीकृष्ण ने कहा-बन्धु जैसे बलराम मेरी शक्ति के आगे सारे संसार को तिनके सा मानता हूँ। अरिष्टनेमि का आदर भी करने

लगे और उन्हे अपनी राज्यसत्ता के लिए चिन्ता भी होने लगी। जो इस घोषणा से समाप्त हुई कि अरिष्टनेमि कुमारावस्था में प्रव्रज्या कर लेवें गे। शक्ति परीक्षण का यह प्रसंग हरिवंश पुराण में अन्य प्रकार से वर्णित है।

**अनासक्त अरिष्टनेमी राजिमती**

अरिष्टनेमि आरंभ से ही चिन्तनशील, गम्भीर और अनासक्त स्वभाव के थे और आयु के साथ-साथ उनकी इस प्रवृत्ति में विकास हो गया। उनकी जगदविमुख से माता-पिता चिन्तित थे। उन्होंने अनेक बार विवाह के प्रस्ताव भी रखे, किन्तु दीक्षोत्सुव पुत्र अस्वीकार ही करता रहा। अरिष्टनेमी के प्रयोजन को मन्द करने के प्रयोजन से श्रीकृष्ण उनके परिणय के पक्ष में थे। इस तर्क के साथ उन्होंने अरिष्टनेमि के साथ विवाहार्य आग्रह किया कि आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव वे भी विवाह किये बिना दाम्पत्व जीवन बिताया था। अन्ततः वह सहमत हो गये और श्रीकृष्ण ने भोजवंशी राजा अग्रसेन की पुत्री राजीमति के साथ उनका सबंध स्थिर कर दिया। यथा समय विवाहयात्रा आरंभ हुई। वर अरिष्टनेमि का रथ जब कन्या के द्वार के समीप पहुँचा, उन्होंने अनेक पशु-पक्षियों का करूप आर्त स्वर (चीत्कार) सुना। पूछने पर ज्ञात हुआ कि बरात के भोजन के लिए अनेक पशु-पक्षियों को समीप में ही एकत्रित कर रखा था। करूणाई अरिष्टनेमि ने पशु-पक्षियो को मुक्त कर दिया और

तौरण से ही लौटकर द्वारिका पहुँच गये। उत्सव अपूर्ण और वातावरण शोकाकुल हो गया। अरिष्टनेमि मांसाहार के विरूद्ध सफल विद्रोह जन-जन में फैला दिया। द्वारिका में एक वर्ष तक वर्षीदान कर उन्हों ने दीक्षा ग्रहण कर ली। राजीमति ने भी संयम ग्रहण कर लिया। वैदिक परम्परा में राधा और कृष्ण को जो स्थान प्राप्त है, जैन परम्परा में वैसा ही स्थान राजीमती और अरिष्टनेमि का है। राजीमती के मन में भी भौतिक वासना के प्रति कोई स्थान न था। वह देह कि नहीं देही की उपासिका थी। यही कारण है कि वह भी अरिष्टनेमि के ही मार्ग पर बढ़ गयी और उनसे भी पहले मुक्त हो गयी।

**द्रोपदी स्वयंवर कथा-**

राजा द्रुपद की सुता द्रौपदी जैन परम्परा में सती शिरोमणि के रूप में मान्य है। पांचाल नरेश की राजकन्या के कारण उसे पाँचाली भी कहा जाता है। उसकी माता का नाम चूलनी था। द्रौपदी के स्वयंवर हेतु अनेक राजाओं, युवाराजों को अमंत्रित किया गया था। प्रथम निमंत्रण श्रीकृष्ण और दशार्हों को भेजा गया था। वे द्रुपद की राजधानी कम्पिलपुर पहुँचे। अनेक शूरवीर नरेश उपस्थित थे किन्तु उस से अवचलित द्रौपदी ने वरमाला पाँचो पाँडवो को धारण किया। एक कन्या का पाँच पुरुषों का वरण-यह एक अद्‌भुत और अभूतपूर्व प्रसंग था। क्या यह अनीतियुक्त नहीं है ? अब राजा द्रुपद क्या करे ? नीतिगत

श्रीकृष्ण के मत की ही प्रतीक्षा सब करने लगे। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी के कृत्य में औचित्य का अनुमोदन कर दिया और द्रौपदी का विवाह पाँचो पाँडवों के साथ सम्पन्न हुआ।

श्रीकृष्ण के इस मत थी कि द्रौपदी ने कोई अनुचित कार्य नहीं किया है, पुष्टी भी तत्काल हो गयी, जब एक चारण लब्धिधारी श्रमण ने मत स्पष्ट किया कि कर्माफलानुसार द्रौपदी ने ऐसा ही करना था, चाहे वह लोक परम्परानुसार न लगे। उसके पूर्व भव में निदान ही ऐसा किया था। मुनिराज ने द्रौपदी के पूर्व भव की कथा भी कही कि तब चम्पानगरी में तीन ब्राह्मण सहोदर रहा करते थे। एक दिन तीनों का सोमदत्त के भोजन था और उसकी पत्नी नागश्री ने कद्दू व्यंजन तैयार किया, पर तूंबी साक कड़वा होने के कारण नहीं परसा। उसने वह शाक धर्मरूचि अणगार को बहरा दिया। आचार्यघोष ने विकर्ति भांप कर किसी निर्दोष स्थान पर शाक पलटने का आदेश दिया. थोड़ा सा शाक भूमि पर गिरा और अनेक चींटिया मर गयीं तो धर्मरूचि को अनकम्पा हो आयी और शेष शाक वह स्वयं खा कर उन्हों ने समाधिपूर्वक देह त्याग दी। इस घटना से सभी नागश्री की भर्त्सना करने लगे, पति ने उसे घर से ही निकाल दिया। अनेक कष्ट पा कर जब उसकी मृत्यु हुई, तो नरक में गई। फिर चण्डलिनी बनी। यह क्रम चलता रहा। एक भव में वह सागरदत्त सेठ की पुत्री सुकुमारिका के रूप में जन्मी। पिता ने जिनदत्त के

पुत्र सागर से सुकुमारिका का विवाह कर दिया और सागर को घर जवाँई रख लिया। सुकुमारिका को सागर का सुख न मिला। उसकी देह तो अंगारों की भाँति दाहक थी। आतांकित सागर सुकुमारिका को त्याग कर चला गया। कन्या का विवाह फिर अन्य युवक के साथ हुआ और वह भी छोड़ गया। पिता ने यह परिणाम पुत्री के पापोदय का माना। सुकुमारिका ने साध्वी गोपालिका के पास संयम ग्रहण कर लिया और छट्ठम तप आरंभ किया। गुरुणी की आज्ञा न होने के कारण वह उद्यान में सूर्य अतापना लेने लगी। उद्यान में वेश्या देवदत्ता अपने पाँच प्रमियों के संग क्रीड़ा कर रही थी। साध्वी के चंचल मन में वासना अंगड़ाईयां लेने लगी। उसने निदान किया कि इस तपस्या के फलस्वरूप मैं भी पाँच पतियों वाली बनूँ। साध्वी का जीव ही वर्तमान में द्रौपदी है। मुनिराज ने कहा-कि लोकरीति के विरूद्ध आचरण कि यह पांच पतियों वाली है। इसकी निन्दा तो हो सकती है, किन्तु पूर्वकृत तपस्या के कारण उसे महान सती का गौरव भी प्राप्त होगा।

कौरवों के मन में राज्य लोभ जगा और पाँडवो से राज्य छीन लिया और राज्य को +पुनः हस्तागत करने हेतु युधिष्ठर से द्यूत का सहारा लिया। उन्होंने द्रौपदी को भी दाँव में लगा दिया और हार गये। दुर्योधन ने द्रौपदी को तो लौटा दिया पर समस्त राज्याधिकार उसी के पास रह गये। पाँडवों को बनवास मिल

गया। अवधि पूर्ण हुई और पाँडव द्वारिका पहुँचे और सुखपूर्वक रहने लगे। दशार्हों की पुत्रियों से उनके विवाह भी हुए।

**द्रौपदी हरणः श्रीकृष्ण द्वारा उद्धार-**

कच्छुल नारद जी उपर से शान्त और गम्भीर, भद्र और विनीत तो लगते थे, किन्तु कलुषित हृदय भी कम न था। किसी समय वे पाँडवों के राजभवन में आए। माता कुंती और पाँडवों ने अतिशय आदर सत्कार किया, किन्तु उन्हें असंयत, अविरत, प्रत्याख्यत, पापकर्मा मानकर द्रौपदी ने ऐसा नहीं किया, न ही उनकी पर्युपासना की। इस अपेक्षा से रूष्ट नारद जी ने सोचा द्रौपदी गर्विष्य हो गई है, उसका अप्रिय करना मेरे लिए श्रेयस्कर है। उन्हों ने सोचा पतिवियोग से बड़ा कष्ट नहीं हो सकता, किन्तु उन्हें विश्वास था कि श्रीकृष्ण के भय से दक्षिण भरताई का कोई राजा द्रौपदी का अपहरण करने के लिए तत्पर नहीं होगा। अतः वह धातकी खण्ड के भरतक्षेत्र की राजधानी अमरकंका पहुँचे जहाँ पद्मनाभ राजा का शासन था। उसके अन्तःपुर में 1000 सुन्दरी रानियाँ थी इस वैभव पर गर्वित होते हुए उसने पूछा, ऋषिराज ! आपने सभी सुन्दरियाँ अन्यत्र भी कहीं देखी हैं। उपहास के स्वर में नारद जी जी ने उत्तर दिया कि यदि तुम इसे ही सुन्दरता मानते हो तो फिर यह जानते ही नहीं कि सुन्दरता कहते किसे हैं? पाँडव रानी द्रौपदी के सौन्दर्य के

सामने तुम्हारी रानियां कुछ भी नहीं हैं। द्रौपदी की प्राप्ति की कामना से प्रेरित राजा पद्मनाभ ने सांगतिक देव (पातालवासी) को आज्ञा दी जो सोती हुई द्रौपदी को अमरकंका राजभवन में ले आया। प्रातः जागृत होने पर एक पर पुरुष के समीप पाकर वह सुकभा गयी और सारी स्थिति को समझ न सकी। राजा ने उसे आशवस्त करते हुए अपना वैभव एवं पराक्रमपूर्ण परिचय दिया और आग्रह किया कि द्रौपदी उस अपना ले। आसन्न संकट से अवगत द्रौपदी ने राजा को सचेत किया कि तुम छलपूर्वक मेरा अपहरण किया है। तुम्हारी कुशल इसी में हैं कि तुम मुझे पुनः हस्तिनापुर के राजभवन में पहुँचा दो, अन्यथा श्रीकृष्ण तुम्हारा सर्वनाश कर देंगे। वे मेरे भ्राता हैं। दंभी पद्मनाभ ने साहसपूर्वक कहा कि श्रीकृष्ण इस धातकीखण्ड में कोई वश नहीं है। यहां के वासुदेव कपिल हैं, श्रीकृष्ण नहीं। उस लम्पट से आत्मरक्षा के लिए नीति ही सहायक हो सकती है, ऐसा मान कर द्रौपदी ने राजा से कहा-कि स्त्री अपने पति के प्रेम इतना शीघ्र कैसे भूल सकती है। मुझे कुछ समय दो। उसने एक माह की अवधि माँग ली इस अवधि में यदि कोई मुझे लेने नहीं आया तो मैं आपकी हो जाऊँगी। राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। द्रौपदी ने अभिग्रह किया कि मैं पति के बिना एक माह भोजन नहीं करूंगी.

हस्तिनापुर में द्रौपदी की खोज होने लगी। असफल पाँडवों ने माता कुन्ती से निवेदन किया कि द्वारिका जाकर श्रीकृष्ण से

सहायता माँगे। श्रीकृष्ण जी ने अश्वासन दिया। कालान्तर में नारद जी द्वारिका आए तो श्रीकृष्ण जी ने कहा कि द्रौपदी आजकल किसी अज्ञात स्थल पर है। आप सर्वत्र विहारी है, शायद आपने उसे कहीं देखा हो। श्रीकृष्ण को उनसे पता चल गया। कि द्रौपदी का अपहरण कर उसे अमरकंका लेजाया गया है। उन्होंने इस आश्य से हस्तिनापुर पाँडवो को सन्देश भेजकर सूचना दे दी कि चतुरंगिणी सेना सहित वैतालिक समुद्र तट पर मेरी प्रतीक्षा करें। वहां पहुंचने पर समुद्र पार करने की समस्या आई। श्रीकृष्ण ने लवणसमुद्र के अधिष्टायक देव सुस्थिर की अराधना कर उनसे अग्रह किया कि वह उनके रथों को अमरकंका पहुँचा दें। समुद्र ने देव प्रभाव से मार्ग दे दिया और छहों रथों को गन्तव्य तक पहुँचा दिया। श्रीकृष्ण की आज्ञा से उनका सारथी पद्मनाभ के पास पहुँचा और अत्यन्त कठोर शब्दों से अपने स्वामी का सन्देश देते हुए कहा- अगर तू जीवित रहना चाहता है तो द्रौपदी श्रीकृष्ण को सौंप दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार बाहर आ। पद्मनाभ ने अस्वीकार कर युद्ध की चुनौति दे डाली। वह सेना सहित बाहर आया। श्रीकृष्ण ने पाँडवों से पूछा कि युद्ध तुम करोगे या मैं? पाँडवों ने कहाँ हम ही युद्ध करेंगे। आप देखिए। आज या तो हम हैं या राजा पद्मनाभ।। श्रीकृष्ण ने कहा कि तुम यह चाहते हो कि राजा हम हैं पद्मनाभ नहीं तो तुम्हारी यह गती न होती, मैं राजा हूं पद्मनाभ नहीं यह प्रतीज्ञा

कर मैं युद्ध करता हूँ तुम देखो। यह कहकर रथारूढ़ होकर श्रीकृष्ण पद्मनाभ के सामने आए उन्हों ने पान्चजन्य शंख से शत्रु की सेना का तृतिया भाग हत हो गया। शाङ्र्ग धनुष की टंकार से अन्य हस्तीगण छिन्न-भिन्न हो गये। आतंकत पद्मनाभ नगर में घुस गया और द्वार बन्द करवा दिया. श्रीकृष्ण ने वैक्रिय लब्धि से विशाल नृसिंह रूप में विकुर्वित हुए और घोर गर्जना सहित पृथ्वी पर पाद-प्रहार किया। दुर्ग की प्राचीरे ध्वस्त हो गई। नगर में त्राहि-त्राहि मच गई, भयतुर पद्मनाभ स्नान कर गिले वस्त्रों सहित रानियों को साथ लेकर द्रौपदी सहित श्रीकृष्ण के पास आय़ा और शुभायच्छापूर्वक द्रौपदी को लौटा दिया।

उस समय धातकीखण्ड में भगवान का समवसरण चल रहा था। जिस में कपिल वासुदेव उपस्थित था। पाँचजन्य की ध्वनि से जब वह चौंक उठा तो भगवान ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा कि यह भरतखण्ड का वासुदेव श्रीकृष्ण की शंख ध्वनि है और द्रौपदी आए रथ का वृत्तान्त कह सुनाया। कपिल श्रीकृष्ण से भेंट करने के आतुर हो उठे। किन्तु दो वासुदेव कभी मिल नहीं सकते। वह रथारूढ़ होकर समुद्र तट पर आए और दूर से शंख ध्वनि की। उत्तर में श्रीकृष्ण ने पांचजन्य स्वति किया। दो महान शंखध्वनियों का मिलन हुआ। तद्न्तर कपिल वासुदेव पद्मनाभ को प्रताड़ित कर अपराध कर दिया और उसके पुत्र को शासक बना दिया।

**रथमर्दण नगर व पाण्डु मथुरा की स्थापना-**

द्रौपदी उद्धार के पश्चात अमरकंका से लौटते समय सुस्थिर देव से भेंट करने को पीछे रह गये और पाँडवों ने नौका से लवण समुद्र की महानदी गंगा को पार कर लिया और नौका को श्रीकृष्ण के लिए वापस न भेज कर उसे छिपा दिया। श्रीकृष्ण भुजाओं से जलचरी चीरते हुए धारा पार करने लगे। 62 योजन चौड़ीधर थी। श्रीकृष्ण थक गये। गंगा ने स्थल बना दिया जिस पर कुछ विश्राम कर उन्हों ने शेष धारा पार कर लिया। जब उन्हें ज्ञात हुआ नौका से पाँडवों ने धारा पार की थी तो पूछा मेरे लिए नौका क्यों नहीं भेजी? पांडवों ने कहा-हम आपकी शक्ति की परीक्षा लेनी चाहते थे। श्रीकृष्ण रोषपूर्वक कि द्रौपदी का उद्धार के पश्चात भी परीक्षा शेष रह गयी क्या? देखो मेरी शक्ति-यह कह कर एक लोहदण्ड के प्रहार से उन्होंने रथ नष्ट कर दिया। यहीं बाद में रथमर्दन नगर बस गया। द्वारिका प्रस्थान से पूर्व श्रीकृष्ण ने पाँडवों को निर्वासन का आदेश सुना दिया।

हस्तिनापुर पहुँचकर पाण्डव बड़े चिन्तित रहे कि अब निर्वासित होकर वह कहां रहें। समस्त दक्षिण भारत के स्वमी श्रीकृष्ण हैं। उससे बड़ा और कौन है? उन्हों ने माता कुन्ती को इस समाधान के लिए श्रीकृष्ण के पास द्वारिका भेजा। श्रीकृष्ण ने समाधान दिया कि पांडव दक्षिण दिशा में बेलान तट पर पाण्डु मथुरा बसाकर मेरे प्रसन्न सेवक बन कर रहें। पाण्डुओं

ने ऐसा ही किया पाण्डु मथुरा बसायी। श्री कृष्ण ने अपनी भागिनी सुभद्रा और अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु के पुत्र परीक्षत को हस्तिनापुर का राज्यासन पर अभिषिक्त किया।

गजसुकुमाल-देवकी के लाल आठवां पुत्र-

एक प्रातःदो मुनि देवकी के द्वार पर आए और देवकी ने उन्हें केसरिया मोदक से प्रतिलाभित किया। कुछ समय बाद वैसे ही दो मुनि फिर पहुँचे और देवकी को आश्चर्य हुआ कि क्योंकि वह जान रही थी कि वही मुनि पुनः आ गये जब कि पारणे हेतु मुनि एक घर में दुबारा नहीं जाते। कुछ ही पलों मे वैसा युग्ल और पहुँचा। देवकी को भ्रमित होकर अब की बार मुनियों ने स्पष्ट किया कि वह एक जैसे लगने वाले छः मुनि है जो परस्पर भाई हैं। छः भाईयों के तथ्य से देवकी के मन में इन मुनियों के प्रति अगाध ममता जागृत हो गई। उसके भी छः पुत्रों को कंस ने मार डाला था। देवकी ऐसा ही जानती थी। उसे अतिमुक्त मुनि का पूर्व भव कथन स्मरण हो आया कि देवकी तेरे आठ पुत्र होंगे और सभी जीवित रहें गे। वह उलझन में पड़ गई कितने पुत्रों की संख्या आठ रही, नही कोई जीवित रहे, मुनि वाणी असत्य कैसे हो सकती है। भगवान अरिष्टनेमी ने समाधान किया कि तेरे सभी पुत्र जीवित हैं। वे छः मुनि तेरे ही लाल हैं और भगवान ने सुलसा का प्रसंग का वर्णन कर दिया।

उसके सातों पुत्र जीवित हैं-इस तथ्य से हर्ष के बावजूद देवकी के मन में यह तीव्र असंतोष व्याप्त हो गया कि उसका वात्सल्य भांवे तो अतृप्त रह गया। वह किसी भी पुत्र के शैशव लीला का आनंद नहीं उठा सकी। भगवान ने देवकी के एक पूर्व भव के एक प्रसंग का वर्णन करते हुए कह कि तुमने अपनी सपत्नी के सात रत्न चुरा लिए थे और जब वह बहुत दुःखी हुई तो एक रत्न उसको वापिस कर दिया था । अतः इस भव के तुम्हारे सात रत्न छिन गये और एक तुझे फिर से वापिस मिल गया। देवकी ने अपने आत्म वात्सल्य के दुःख की चर्चा करते हुए श्रीकृष्ण से कहा कि मैं एक भी पुत्र का लालन-पालन नहीं कर सकी। अतिमुक्त मुनि की घोषणा भी आठ पुत्रों की थी जबकि सात सहोदर ही हो। श्रीकृष्ण ने नैगमैषी देव की अराधना की, जिसने साक्षात होकर कहाकि- देवकी के आठवाँ पुत्र होगा पर वह यौवन में ही प्रव्रज्या ग्रहण कर लेगा।

देवकी की मनोकामना पूर्ण हुई। आठवें पुत्र का नाम गजसुकमाल रखा गया। बड़ा होने पर उसका विवाह द्रुमराज की पुत्री प्रभावती के साथ कराया गया। श्रीकृष्ण ने उसका विवाह सोमशर्मा ब्राह्मण की पुत्री सोमा के साथ भी करवाया। जब गजसुकमाल भगवान अरिष्टनेमि के समवसरण में तुरंत ही दीक्षा ग्रहण कर ली और वह शमशान में जाकर कायोत्सर्ग में लीन हो गये। उसे उद्यानलीन देखकर सोमदत्त ब्राह्मण क्रुद्ध हो गया कि

इसे यही करना था तो मेरी पुत्री का जीवन क्यों नष्ट कर दिया। वहीं मिट्टी का घेरा तपस्वी के शीर्ष पर बनाकर उसमें जलते हुए अंगारे भर दिये। मुनि गजसुकमाल ने यह भयंकर उपसर्ग सहन कर लिया और शरीर त्याग कर मुक्त हो गये।

गजसुकमाल के शोक में वसुदेव के अतिरिक्त 9 दशार्हों के साथ अनेक यादवों ने दीक्षा ग्रहण की। देवकी रोहिणी व कनकवती को छोड़ वसुदेव की सभी रानियाँ भी अनेक यादवों के साथ साध्वी हो गयीं।

अगामी प्रातः जब श्रीकृष्ण भगवान अरिष्टनेमि के समवसरण में गये तो गजसुकमाल को न देख कर उसके विषय मे पूछा- भगवान ने कहा उसने तो कल ही मोक्ष प्राप्त कर लिया था, उसे एक संहारक मिल गया था। श्रीकृष्ण भगवान की गूढ़ वाणी का अर्थ समझ गये। अवश्य ही उसने कठोर उपसर्ग दिया है और उनके नेत्र रक्ताभ हो उठे। प्रभु ने कहा- उस पर क्रोध करना व्यर्थ है। लौटते समय वह तुम्हें नगर के द्वार पर मिल जायगा और तुम्हें देखकर वह स्वतः ही मर जाएगा। श्री कृष्ण को नगर प्रवेश के समय सोमशर्मा मिल गया जो उनके भय से आतंकित हो गिर गया और श्रीकृष्ण व सभी के पैरों तले कुचलकर मर गया।

**<u>महाभारत प्रसंग</u>**

युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव- ये पाँचों भाई राज पाण्डु के पुत्र थे। पाण्डव कहलाते थे। इनकी माता कुन्ती वसुदेव की सहोदरा थी और इस प्रकार पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण का सम्बन्ध जन्म स्नेह था। पाण्डु के अनुज धृतराष्ट्र को सौ पुत्र कौरव कहलाते थे। दुर्योधन उनमें ज्येष्ठ था पाण्डव हस्तिनापुर और कौरव इन्द्रप्रस्थ के स्वामी थे। युधिष्ठर न्यायप्रिय,सत्यवादी और सदाचारी था और धर्मराज कहलाते ते। जबकि दुर्योधन अन्यायी, अनाचारी और दुरात्मा था। उसका नाम ही दुर्योधन था. पाण्डवों का वैभव, पुण्य और कीर्ति से उसे बड़ी ईर्ष्या थी और उनका राज्य वह हड़प लेना चाहता था। बल के विषय मे आशा न होने पर छल को उसने साधन बनाया। द्रयुत क्रिया मे पराजित कर दुर्योधन ने पाण्डवों का सब कुछ छीन लिया, यहाँ तक की द्रौपदी पर भी अधिकार कर लिया और भरी सभा में दुःशासन ने उसका चीर हरण किया और दुर्योधन ने अपनी निर्वस्त्र जंघा पर बैठने को कहा । बलशाली नृपति और कुल के गुरु सभी मौन रहे। किसी ने इस अनाचार का विरोध नहीं किया. भीम ने प्रतीज्ञा की मैं दुःशासन के इन कंधों को उखाड़ कर दुर्योधन की जंघा चीर कर ही दम लूँगा। पराजित पाण्डवों को बारह वर्ष का बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास स्वीकार करना पड़ा। इस अवधि में दुर्योधन ने पाण्डवों को नष्ट करने के अनेकों कुचक्र चलाता रहा। अवधि पूर्ण हुई और पाण्डव

जन विराट नगर में प्रकट हो गये। श्रीकृष्ण, कुन्ती, द्रौपदी सहित पाण्डवों को द्वारिका ले आए और कौरवों के अन्याय-अत्याचार से क्षुब्द हो उठे।

**<u>दुर्योधन को श्री कृष्ण का सन्देश-</u>**

नीतिज्ञ श्रीकृष्ण ने द्रुपद के पुरोहित के साथ दुर्योधन को सन्देश भेजा। द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, भीष्म, अश्वथामा, शल्य, जयद्रथ, कृत्तवर्मा, भवद्त्त,कर्ण, विकर्ण, सुशर्मा, शकुनि, भूरिमुथा, दिव्यज्ञ, दुशासन आदि कौरव राज्यसभा में उपस्थित थे। तभी श्रीकृष्ण का सन्देश पहुँच गया। तेरह वर्ष बनवास और अज्ञातवास पूर्ण कर पाण्डव प्रकट हुए हैं और विशष्ट राजकुमारी उचरा से उन्हें अभिमन्यु का परिणय भी सम्पन्न करवाया। वे कौरवों से स्नेह रखते हैं। अब आप पाण्डवों को स्वच्छ मन से हस्तिनापुर बुलाएं। भाईयों के मध्य सम्पति का बंटवारा मनमुटाव अच्छा नहीं होता। तुमने नहीं बुलाया तो भी युधिष्ठर भाईयों सहित वहाँ आएगें संभव है कि इन्द्रप्रस्थ भी तुम्हारा न रहे। अब तुम्हें वन-वन भटकना पड़ सकता है। पाण्डवों को निर्बल समझने की भूल मत करना। जहाँ धर्म है वहाँ विजय है. विवेक के साथ विचार कर लो जिससे बाद में पछताना न पड़े। दुर्योधन इस सन्देश से भड़क उठा। क्रोधाभिभूत हो कहने लगा- युद्ध में पाण्डव तो क्या श्रीकृष्ण भी हम से जीत नहीं सकते। मैं उनकी कीर्ति ध्वस्थ कर दूँगा। जो अपने कृत्य से कहना कि

कुरुक्षेत्र की समर भूमि में हमारे समस्त अपने बल का प्रदर्शन करें। श्रीकृष्ण को अवगत करवाया कि उनकी मैत्रीभावना से आप्रभासित आहंकारी दुर्योधन पाण्डवों को तुच्छ समझता है और उन्हें पराजित करते ही पाण्डव अपना अधिकार प्राप्त कर सकेगें।

**धृतराष्ट्र का सन्देश-**

परिस्थितियों की विषमता को देख धृतराष्ट्र ने धर्मराज के पास संजय द्वारा सन्देश भेजा कि तुम विवेकशील हो, ज्ञानी जन स्वार्थ त्यागकर भ्रातृहित में अनेक उत्सर्ग करते हैं। युद्ध भयानक परिणामदायक होता है। अपराजय का विश्वासी भी कभी परास्त हो जाता है। दुर्योधन के कथन पर कान न देकर तुम शुभाशुभ का निर्णय विवेक बुद्धि से करो और युद्ध न होने दो। युधिष्ठर ने उत्तर में कहाकि धृतराष्ट्र एक बात कहना भूल गये कि अन्याय का प्रतिकार भी न्याय है। अन्यायी का अन्याय सहन करना-अन्याय को प्रश्रय देना है। ऐसी सहिष्णुता स्वयं मे अन्याय है।

**श्री कृष्ण द्वारा दूत कार्य-**

श्री कृष्ण चाहते थे कि युद्ध के बिना यह राज्याधिकार की समस्या सुलझ जाए। दुर्योधन को सन्मार्ग पर लाने के लिए अयोजन से वह स्वयं उसके पास गये। उसने भव्य स्वागत कर रत्नासन दिया। उन्होंने कहा- संजय कदाचित संधि प्रस्ताव लाया

था पर वह धर्मराज के समक्ष रख न सका, रखता तो वह भी स्वीकृत न होता। यदि युद्ध हुआ तो वह कौरवों के लिए महाविनाशकारी सिद्ध होगा। इस परिणाम से अशान्त हो मैं पाण्डवों को जताने बिना ही यहाँ चला आया। श्रीकृष्ण ने दुर्योधन से कहा-कि पाण्डवों को यदि छोड़ा सा ही साम्राज्य दे दो यदि शांति से न दिया तो वे परमवीर कौरवों का सर्वनाश कर देंगे। मिथ्या दंभ और स्वार्थ का त्याग करने में ही तुम्हारा और तुम्हारे कुल का हित है। तुम पाण्डवों को पाँच गांव दे दो। उनकी प्रतीष्ठा की रक्षा भी हो जाएगी और उन्हें सर छिपाने की जगह भी मिल जाएगी। पाण्डव मेरे परामर्श पर इस अल्प प्राप्ति पर भी संतोष कर लेंगे। अन्यथा विनाशकारी महायुद्ध अवशंभावी है। दुर्योधन ने हठपूर्वक श्री कृष्ण के प्रस्ताव को ठुकरा दिया और पाण्डवों के साथ श्रीकृष्ण को भी शक्ति परीक्षण की चुनौति दी। यही नही वह कर्ण के सहयोग से श्रीकृष्ण को बन्दी बनाना चाहता था। ज्ञात होने पर श्रीकृष्ण ने कहा-कि क्या कभी श्रृंगाल ने भी सिंह को बांधा है? तुम लोग दुरात्मा हो-उपकारक का भी अपकार करना चाहते हो।

**<u>भीष्म पितामह का प्रयत्न-</u>**

भीष्मपितामह का श्रीकृष्ण का यह रोष कोरवों के लिए विनाशकारी लगा। उन्होंने स्नेहपूर्वक श्रीकृष्ण से कहा- कि बिजली के उत्ताप से अप्रभावित रहकर मेघ सदा शीतल जल ही बरसते हैं। आप भी दुर्योधन के दुर्व्यवहार से कुपित न होना। यदि यह युद्ध हो ही गया तो मेरी इच्छा है कि आप इस युद्ध में भाग न लें। किन्तु आप का आदेश भी मेरे लिए शिरोधार्य है, अतः मैं वचन देता हूँ कि युद्ध में मैं शस्त्र नही उठाऊँगा।

**कर्ण को सन्मार्ग बोध-**

श्रीकृष्ण ने कर्ण से कहा- कि तुम संसार में परमवीर और शक्तिशाली हो,गुणशील हो, पर दुरात्मा दुर्योधन के साथ तुम्हारा मेल असंगत है, तुम्हें तो पराक्रमी पाण्डवों के साथ रहना चाहिए। पिता भी दुरात्मा हो तो वह त्याज्य होता है। दुर्योधन तो तुम्हारा मित्र ही है. दुराचारी अपने मित्रों को, रक्षकों व सहायकों को भी विनाश कर देते हैं। एक रहस्य का उद्घाटन करते हुए श्री कृष्ण ने कहा- सुनो कर्ण, तुम सूत पुत्र नहीं, कुन्ती के पुत्र हो राधा ने मात्र लालन-पालन किया है। इस नाते तुम राधेय़ कहलाते हो-स्वयं कुन्ती ने मुझे यह बताया था। यदि तुम पाण्डवों के संग रहोगे तो तुम्हारा ज्येष्ठ भ्राता होने नाते तुम्हारा अधिकार भी कुछ अधिक रहेगा। श्रीकृष्ण के उद्बोधन से अपनी भूल अनुभव हुई कि उसने दुर्योधन से मैत्री की, किन्तु जब सभी सूत पुत्र कहकर उसका अपमान करते थे तो

दुर्योधन ने ही राज्य देकर उसकी गरिमा बढ़ायी थी। कर्ण ने कहा कि मैं विश्वासघात नहीं करूंगां। किन्तु अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी पाण्डव को नहीं मारूँगां और मैं अर्जुन को मारूँगा तो मैं जीवित रहूंगा, यदि मैं मरूँगा तो अर्जुन जीवित रहेगा, माता कुन्ती के तो पाँचो पुत्र जीवित रहेंगे।

श्रीकृष्ण पाण्डु राजा से मिलकर द्वारिका लौट आए। वृत्तान्त सब को सुनकर पाण्डवों का उत्साह बढ़ा और वे युद्ध की तैयारी करने लगे।

कौरव-पाण्डव के युद्ध महाभारत में श्रीकृष्ण ने अर्जुन का सारथी की भूमिका निभायी और स्वयं शस्त्र नहीं उठाया। प्रायः जैन ग्रंथों में महाभारत युद्ध का वर्णन नहीं मिलता। कतिपय ग्रंथकारों ने श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध को ही महाभारत मान लिया है। कहीं कौरव-पाण्डव युद्ध को जरासंध युद्ध के पूर्व की घटना के रूप में वर्णित किया गया है और उल्लेख किया गया है कि जरासंध दुर्योधन के पक्ष में सम्मिलित था। कौरव-पाण्डव युद्ध और श्रीकृष्ण-जरासंध युद्ध को एक मानना तर्कसंगत नहीं। दोनों के रणस्थल क्रमशः कुरूक्षेत्र और सेनापति ही भिन्न-भिन्न थे पूज्यपाद श्रमणसंघ तृतियपट्टधर आचार्य सम्राट् श्री देविन्द्र मुनि जी महाराज की मान्यता है कि हमारी अपनी दृष्टि से भी महाभारत और जरासंध युद्ध पृथक-पृथक है।

महाभारत प्रसंग वर्णित न होने के कारण जैन ग्रंथों मे गीता के उपदेश का वर्णित नहीं मिलता।

**शिशुपाल वध-**

कोशल नरेश भेवज की रानी मद्री थी। इसी राज-दम्पति का पुत्र था शिशुपाल जिसके जन्म से ही तीन नेत्रय थे और वह अद्भुतता के कारण माता-पिता चिन्तित और उद्विग्न रहा करते थे। एक निमितज्ञ से उन्हें ज्ञात हुआ कि जिस व्यक्ति की गोद में लेने से तीसरा नेत्र लुप्त हो जाएगा, यह उसी के हाथों मारा जाएगा। त्रिनेत्र पुत्र के साथ राजा-रानी इरावती में श्रीकृष्ण से भेंट करने आए तो श्रीकृष्ण ने बालक को गोद में उठाया और उसका अतिरिक्त नेत्र बन्द हो गया, भावी अनिष्ट के निश्चय से भयभीत, काँपते हुए पति-पत्नी श्री कृष्ण से पुत्र के प्राणों की भिक्षा मांगने लगे। मद्री को आश्वस्त करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा- कि जब तक यह सौ अपराध न कर ले, मैं इसका वध नहीं करूँगा। बड़ा होने पर शिशुपाल अंहकारी हो गया । श्रीकृष्ण को भी आपने निमन्त्रण दे रखा था और उन पर आक्रमण भी करने लगा। उस ने सौ अपराध कर डाले. वे रूक्मिणि से विवाह करना चाहता था। युद्धभिलाषी नारद जी ने यह सूचना श्रीकृष्ण जी को दी और वे 9 प्रकार की सेना के साथ पहुँचे, शिशुपाल का वध कर दिया और रुक्मिणि देवी से विवाह कर लिया।

**द्वारका-दाह-**

धर्मसभा में भगवान ने श्रीकृष्ण वासुदेव की अनसुनी मानसिकता उलझन को भापकर कहा-कि वासुदेव सदा कृत निदान होते हैं, वे संभम-पथ पर गमन नहीं कर सकते। उन्हों ने कहा तुम्हारा भाई जरा कुमार के हाथों तुम्हारा अवसान होगा और तुम्हारी द्वारका उस से पूर्व ही नष्ट हो जाएगी। मदिरा, द्वैपायन,अग्नि-द्वारिका नाश का मूल कारण होगें। भगवान ने कहा कि शौर्यपुर के समीप के तापस पारस का शारीरिक सम्बन्ध यमुना द्वीप के नीचवंशीय कन्या से हो गया था और द्वैपायन उसका पुत्र है जो इन्द्रिय विजेता है। मदिरा के मद में यादववंशीय द्वैपायन को पीड़ा देंगे और वह द्वारिका भस्म कर देंगे। तुम श्रीकृष्ण और बलराम बच जाओगे और कालान्तर में जराकुमार के बाण से तुम मरण को प्राप्त करोगे।

जरा कुमार अनुज के विरूद्ध अपने भयंकर अपराध की भविष्यवाणी से आत्मग्लानि हुई। यह सोचकर की मैं वासुदेव के साथ नहीं रहूँगा तो यह कुकर्म टल जाएगा। वह तत्काल वन में चला गया। द्वैपायन भी द्वारिका विनाश के हेतु बनने से बचने के लिए वन में चले गये। भगवान ने यह संकेत भी दिया कि वासुदेव श्रीकृष्ण का जीव ही अपने एक भावी भव में अमम नाम के बाहरवें तीर्थंकर होंगे। इन्हीं के शासनकाल में बलराम का जीव भी मुक्ति लाभ करेगा।

मदिरा से द्वारिका नाश के भय द्रदभंगम कर वासुदेव श्रीकृष्ण ने मदिरा के निर्माण एव सेवन पर प्रतिबंध लगा दिया। सारी मदिरा एकत्रित कर उसे नष्ट करने के प्रयोजन कदुम्ब वन की कादम्बरी कन्दरा शिला कुंडो में फेंक दिया गया। द्वारिका रक्षार्थ प्रजा धर्म-संभुल जीवन बिताने लगी। शिलाकुंडों में नष्ट होने के स्थान पर मदिरा पुरानी होकर अधिक स्वादु, अधिक मादक बन गई। शाम्ब-सेवक वन में तृषामुक्त भटक रहे थे। शिलाकुंडों मे संगृीहत द्रव पीकर वे मस्त हो गये। सेवक ने उसका आनन्द शाम्ब को भी दिया और फिर वह मदिरा लोलुप शाम्ब अनेक यादवों के साथ कंदरा में पहुँच गये। ये लोग जन मदोत्मत्त होकर वह विहार कर रहे थे, सहसा ध्यान द्वैपायन को देख क्रीड़ावश वे उन्हें सताने लगे, उन्हें मारा-पीटा भी। रूष्टऋषि ने सम्पूर्ण द्वारिका को भस्म करने का निदान कर लिया। श्रीकृष्ण बलराम इस काण्ड से सन्न रह गये। उन्हों ने यादवों की धृष्टता के लिए उन्होंने ऋषि से क्षमायाचना की, किन्तु ऋषि अतिशय कुपित थे। बोले तुम दोनों ने क्षमा मांगी है, तुम्हें अग्नि में नहीं पहुँचाऊँगां, पर शेष द्वारिका भस्म करने में निदान कर चुका हूँ। कालान्तर में द्वैपायन का शारीरान्त हो गया और उनका जीव अग्निकुमार देव बना तथा पूर्वभव के निदान को विस्मृत न कर पाया। द्वारिका आकर देव ने देखा कि प्रजा तो धर्मनिष्ठ है, वह उन को आहित नहीं कर पाये। उन्हें

ग्यारह वर्ष प्रतीक्षा करनी पड़ी, जब तक प्रजा भय से मुक्त होकर धर्म-शिथिल होने लगी। मदिरा का भी पुनः चलन हो गया। द्वैपायन के लिए अब अनुकूल परिस्थितियाँ बनने लगी। उन्होंने सर्वत्र वायु के प्रयोग से वन का सूखा घास लकड़िया आदि द्वारिका मे एकत्रित कर लिया। आकाश से अंगारे बरसने लगे। त्राहि-त्राहि भय गर्मी द्वारिका का वैभव अग्नि भेंट होने लगा। प्राण बचाकर भागती प्रजा अग्निदेव द्वैपायन निर्ममता पूर्वक अग्नि में झोंकने लगे। वसुदेव-देवकी और रोहिणी को रथ में बिठाकर श्रीकृष्ण-बलराम स्वयं रथ को खींचकर उन्हें सुरक्षित स्थान ले जाने लगे। नगर द्वार बन्द और रथ ध्वस्त हो गया। बलराम ने पाद-प्रहार से द्वार तोड़ा तो अग्निदेव प्रत्यक्ष हो कहा, कि इनकी रक्षा करना व्यर्थ है, तुम दो भाईयों के अतिरिक्त सब कुछ नष्ट होगा। पिता एवं दोनों माताओं ने संथारा लिया और आयुष्य पूर्ण कर स्वर्ग सिधार गये। श्रीकृष्ण बलराम के साथ जीर्णोयान में चले गये। छः माह तक अग्नि प्रज्ज्वलित रही और वह भव्य वैभवपूर्ण नगरी राख की ढ़ेरी हो गयी। समुद्र में प्रचण्ड तुफान उठा और वह दग्ध द्वारिका जलमग्न हो गई। पूर्व जहाँ अन्य नगर था अब वहाँ समुद्र हिलोरे लेने लगा।

**श्रीकृष्णवसान-**

जीर्णोधान से अपनी द्वारिका नष्ट होते देखकर वहाँ का सामर्थ्य भी जल चुक हो गया तो श्रीकृष्ण वहाँ से हट जाना चाहते थे, पर कहाँ जाएं यह प्रश्न था। अनेक राज्यविरोधी हो चुके थे, पाँडवों को निष्कासित किया गया था अतः पाण्डु मथुरा जाने में भी श्रीकृष्ण संकोच था। बलराम के प्रयत्नों से अन्ततः वहाँ जाने को चल दिये। मार्ग में धृतराष्ट्र के पुत्र अन्धादक का राज्य हस्तिनापुर नगर आया। श्रीकृष्ण विश्राम करने लगे और बलराम भोजन व्यवस्था के लिए नगर गये। खाद्य पदार्थों के मुल्य रूप में उन्हों ने व्यापारी को स्वर्ण मुद्रिका दी जिसे देखकर वह शंकित हो गया और राजा को सूचित किया। राजा सैनिकों सहित आ पहुँचा और आक्रमण कर दिया। बलराम के सिंहनाद करने पर श्रीकृष्ण भी पहुँच गये और आछंदिक को पराजित कर दिया। तब श्रीकृष्ण बलराम कौशम्भी नगरी के वन में पहुँचे, श्रीकृष्ण को प्यास लगी। बलराम जब पानी लेने गये और श्रीकृष्ण एक वृक्ष तले लेट गये, वे एक पैर घुटने पर दूसरे पैर की पिंडली पर टिकाए हुए थे, जिसकी पगतली को देखकर दूर से व्याध को हरिण का भ्रम हुआ और उसने बाण मारा, वे तुरन्त उठ बैठे और ऊँच स्वर से पूछा किसने मुझे बाण मारा। आज तक बिना नाम-गौत्र बताए किसी ने मुझ पर प्रहार नहीं किया, तुरन्त व्याध को अपनी भूल ध्यान में आ गयी और वह हतप्रभ सा एक वृक्ष की ओट में छिप गया, वहीं से उत्तर देते हुए कहा-

वसुदेव और जरादेवी मेरे जनक-जननी हैं, भगवान अरिष्टनेमी की भविष्यवाणी सुन भ्राता श्री कृष्ण हितकामना के साथ ही मैं वन में चला आया और बारह वर्ष यहाँ व्यतीत कर दिए, अब तक किसी मानव को मैंने इस वन में नहीं देखा, तुम कौन हो, श्रीकृष्ण समझ गये कि यह जराकुमार ही है। स्नेह मिश्रित स्वर में श्रीकृष्ण ने जराकुमार को समीप बुलाकर कहा, कि मुझे खेद है कि तुम्हार 12 वर्ष का वन प्रवास सफल नहीं हुआ, तुम मेरे मरण को टालना चाहा, वो ही आज तुम्हारे हाथों हो गया । मैं तुम्हारा भाई कृष्ण हूँ। अब शोक करना व्यर्थ है। तुम बलराम के लौट आने से पूर्व यहाँ से चले जाओ, अन्यथा वह तुम्हें जीवित नहीं छोडेगा। तुम ही यादव वंश में बचे हो, जाओ, पाण्डु मथुरा में जाकर पाण्डवों को द्वारिका दहन और मेरी स्थिति से अवगत करते हुए कहना उन्हें निष्कासित करने के कारण मैं क्षमा चाहता हूँ। श्रीकृष्ण ने पैर से बाण निकाल कर जरा कुमार को आदेशानुसार चल पड़ा। श्री कृष्ण पूर्वभिमुख होकर अंजलि छोड़कर पेच पर मष्टि को प्रणाम करते हुए कहा- कि रूक्मिणी देवी और प्रद्युमन आदि कुमार धन्य हैं, जिन्होंने संयम मार्ग ग्रहण किया।इसी प्रकार चिन्तन करते हुए उनका आयुष्य पूर्ण हो गया। श्रीकृष्ण वासुदेव 16 वर्ष तक कुमारावस्था में रहे और 56 वर्ष तक मांडलिक अवस्था में 928 वर्ष अर्धचक्री अवस्था में रहे और इस प्रकार उनकी कुल आयुष्य एक हजार वर्ष का हुआ।

**बलदेव द्वारा प्रव्रज्या-**

जल लेकर आए तो बलराम ने श्रीकृष्ण को मचल पाया। उन्हों ने बार-बार पुकारा पर कोई उत्तर न पाकर उन्होंने सोचा भाई निद्रा मग्न है। वे मोह वश मरण की कल्पना भी नहीं कर पाये। वे श्रीकृष्ण की पार्थिव शरीर को कंदे पर उठाकर वन-वन भटकने लगे। किसी समय सिद्धार्थ बलराम का सारथी था, जो संयम साधकर देव हो गया था। देव ने बलराम की मोहदशा दूर करनेका प्रयास किया प्रस्वर रथ त्यार कर उसे ढ़लान में लुढ़का दिया और रथ खण्ड-खण्ड हो गया। देव प्रस्तर खण्डों को जोड़ने लगा। बलदेव ने कहा- प्रस्वर खण्ड भी कभी जुड़ सकते हैं। देव ने- प्रत्युतर में कहा मृतक भी कभी सजीव हो सकता है और आप्रभामित हो बलराम आगे बढ़ गये। देव फिर बलराम को आगे मिला एक किसान के रूप में जो पत्थर पर कमल उगा रहा था। बलराम ने कहा- तुम बावले हो, कभी पत्थर पर भी कमल खिल सकता है, किसान रूप देव ने उत्तर दिया- मुर्दे भी भला कभी जीवित हो सकते हैं। पर बलराम का मोह न छूटा, वे आगे बढ़ गये। अब किसान रूप देव एक सूखे पेड़ के ठूँठ को पानी पिलाता हुआ मिला तो बलराम ने कहा- तुम मूर्ख हो कभी सूखा ठूँठ भी हरा हो सकता है। देव ने अब की बार स्पष्टता से कहा-कि तुम्हारा मृत भाई कैसे जीवित हो सकता है। बलराम सघन मोह से घिरे थे, वे कथन श्रीकृष्ण के सन्दर्भ नहीं भान पाये और आगे

बढ़ गये। आगे बलराम ने देखा कि एक मृत गाय को किसान घास खिलाने का प्रयास कर रहा है। किसान को इस बार भी मूर्ख कहते हुए कहा- मृत गाय घास कैसे खाएगी। किसान ने कहा- तुम भी तो किसी आशा से ही मृत भाई के शव को 6 महीने से कंधे पर लादे घूम रहे हो, तब बलराम का मोह टूटा। उन्हें लगा कि मृत देह से दुर्गन्ध आ रही है। उन्होंने पार्थिव को कन्धे से उतारा और अन्तिम संस्कार किया। मुनि के सदुपदेश से प्रतिबोधित होकर बलराम ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

मुनि बलदेव ने  घोर तपस्या किया। विचरण करते वे नगर के बाहर एक कुँए के समीप पहुँचे जहां जल लेने के लिए एक स्त्री आयी थी । वह मुनि के रूप पर मुग्ध हो गयी और घड़े के स्थान पर अपने बालक के गले में रस्सी का फंदा करने लगी। स्त्री को सचेत कर बालक के प्राण तो मुनि ने बचा लिए पर उनको अपने रूप रंग क्षोभ होने लगा। और उन्होंने अभिग्रह कर लिया कि अब मैं किसी बस्ती में न जाऊँगा. वन में निर्दोष भिक्षा मिल गई तो ग्रहण करूंगा, अन्यथा निराहार रहूंगा।

वन में तपस्यारत मुनि बलराम को देख कर वनवासी भाँति-भाँति की कल्पना करते थे। कोई उन्हें तापस कहता था कोई तन्त्र-साधक। सूचना पाकर राजा अपनी सेना लेकर वन मे आया। वह मुनि को मारदेना चाहता ता। अवधिज्ञान से देव (सिद्धार्थ) को सब कुछ ज्ञात हो गया। उसमें वन में अनेक सिंह

कुर्वित कर दिये। भयंकर सिहों से आतंकित सेना भाग गई. राजा मुनिराज के चरणों मे गिरकर अपने अशुभ विचारों पर बार-बार क्षमायाचना करने लगा, देव ने धन्य पूर्वक अपनी माया हटा ली। मुनि की प्रबल अहिंसा भावना का प्रभाव वन मे पशु-पक्षियों पर भी था। पारस्परिक वैमनस्य भूलाकर वे स्नेहपूर्वक एक साथ रहने लगे. स्नेहाविभूत हो कर एक मृग तो सदा मुनि के साथ ही रहने लगा। मृग जिधर निर्दोष आहार की संभावना होती मुनि को उधर ही ले चलता था। यह मृग एक दिन मुनि को एक रथरूढ़ व्यक्ति के पास ले गया। रथी ने सभक्ति प्रणाम कर निर्दोष आहार अर्पित किया। मृग के नेत्र साक्षु हो उठे। वह रथि का सौभाग्यवान मान रहा था जिसे मुनि सेवा का अवसर मिला। मुनि सोच रहे थे यह श्रावक उत्तम बुद्धि वाला और भद्र परिणामी है।

मुनि बलराम, मृग और रथी इस प्रकार शुभ विचारों में मग्न थे कि तभी सहसा वृक्ष की एक भारी शाख टूटकर उन पर गिरी और तीनो प्राणियों की इहलीला समाप्त हो गई। शुभ ध्यान में देहत्याग कर वह तीनों ब्रह्मलोक के पद्मोत्तर विमान में उत्पन्न हुए।

।। जय श्री कृष्ण ।।

**********